बृहत्

सामायिक पाठ

और

बृहत् प्रतिक्रमण

विधि, अर्थ, पचखाण, कल्याण आलोयणा, लघु-
सहस्रनाम, मिच्छामिदुक्कडं, वन्दना-जकडी,
तीर्थवन्दना, आलोचना पाठ, सामा-
यिक संस्कृत व भाषा, मेरी
भावना और लघु प्रति-
क्रमण सहित।

२
कापाई

—दिगम्बर जैन पुस्तकालय—सूरत :

बृहत् सामायिक पाठ

और

बृहत् प्रतिक्रमण ।

(विधि, अर्थ, कल्याण आलोयणा, लघुसहस्त्रनामस्तोत्र, मिच्छामिदुक्कडं, वंदनाजकडी, तीर्थवन्दना, आलोचना-पाठ, मेरी भावना और सामायिकपाठ सहित)
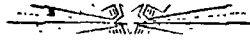
संग्रहकर्ता, अनुवादक व प्रकाशक—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

मालिक, दिगंबर जैनपुस्तकालय, कापड़ियाभवन—सूरत ।

प्रथमावृत्ति] वीर सं० २४६६ [प्रति १०००

"जैन विजय" प्रिन्टिंग प्रेस, गांधीचौक—सूरतमें मूलचन्द किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया ।

मूल्य—बारह आना ।

प्रस्तावना ।

जैनोंकी षडावश्यक क्रियाओंमें सामायिक व प्रतिक्रमणको मुख्य स्थान दिया गया है और यह क्रिया मुनियोंको तथा श्रावकोंको करना आवश्यक है, तौभी इसका प्रचार दि० जैन समाजमें बहुत कम प्रतीत होता है। यद्यपि दक्षिणमें तो सामायिक प्रतिक्रमणका कुछ प्रचार है लेकिन उत्तर पूर्व पश्चिम तरफ तो यह नाम मात्र भी नहीं है। उधर तो णमोकार मंत्रकी १०८ वार जाप देनेको ही सामायिक कहते हैं। श्वेतांबर जैन समाजमें सामायिक प्रतिक्रमण करनेका इतना अत्यधिक प्रचार है कि प्राय: प्रत्येक स्त्री पुरुषके प्रतिक्रमणपाठ कंठाग्र होता है और वे नित्य सामान्यरूपसे तथा पर्व तिथियोंमें विशेषरूपसे उपाश्रयमें जाकर ही प्रतिक्रमण करते हैं। किन्तु इस दिशामें दि० जैन समाज बहुत पीछे है।

अत: दि० जैन समाजमें सामायिक-प्रतिक्रमणका प्रचार करनेके लिये सबसे प्रथम संस्कृतके पारगामी व अपनेको पुलाक मुनि कहलानेवाले श्री हर्षकीर्तिजीने भावनगरमें कई मास ठहरकर वीर सं० २४२४ में (४२ वर्ष पूर्व) बड़ा सामायिक (गुजराती अर्थसहित) और प्रतिक्रमण बड़ी खोजपूर्वक भावनगर दि० जैन संघसे प्रकट करवाया था, जिसका बहुत प्रचार हुआ था। उसके बाद स्व० सेठ हीराचन्द नेमचन्द दोशी सोलापुरने सामायिक प्रतिक्रमण पाठ मराठी सहित प्रकट किया था। फिर श्रीमान् ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजीने

श्री अमितगति आचार्यकृत संस्कृत सामायिक पाठको मूल हिन्दी गद्य-पद्य अर्थ व विधि सहित प्रकट करवाया जिसका आजकल अच्छा प्रचार है। तथा पण्डित नंदनलालजी चावलीनिवासी (स्व० मुनि सुधर्मसागरजी) ने श्रावक प्रतिक्रमण हिन्दी अर्थ सहित वीर सं० २४४९में तैयार कि याथा जो हमने प्रकट करके "दिगम्बर जैन"के १४ वें वर्षके ग्राहकोंको भेंट बांटा था तथा कलकत्तेसे भी यह प्रतिक्रमण फिर प्रकट हुआ था।

इसके बाद हमने उपरोक्त बृहत् सामायिक पाठ गुजराती अर्थ सहित वीर सं० २४६० में प्रकट किया था, वह भी खतम हो जानेसे बृहत् सामायिक पाठकी मांग आती ही रहती थी। ऐसे समयमें रतलामनिवासी लेकिन अभी बम्बईमें रहनेवाले श्री० झवेरलाल रीखवदासजी गांधीने हमें उत्तेजित किया कि आप बृहत् सामायिक पाठ व प्रतिक्रमण हिन्दी अर्थ सहित प्रकट करें तो सारे हिन्दके दि० जैनोंमें बृहत् सामायिक प्रतिक्रमणका प्रचार होजावे। अतः हमने यह प्रयास प्रारंभ किया और सामायिक पाठका हिन्दी अनुवाद तैयार करके इस धार्मिक ग्रंथको प्रकट किया है जो पाठकोंके सामने है।

इस ग्रन्थमें सामायिक प्रतिक्रमणकी विधि, उपवासका पच्चखाण आदि भी प्रकट किया है। तथा साथमें कल्याण आलोचना भी हिन्दी अर्थ सहित दी गई है। इनके अतिरिक्त भाई झवेरलाल रिखवदासजी गांधीकी सूचनासे लघुसहस्रनाम, वंदना—जकड़ी व तीर्थवंदना भी प्रकाशित की है। लघुसहस्रनाम मूल तो एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकसे लिया है तथा वंदना—जकड़ी भाई झवेरलालजी गांधीने एक हस्तलिखित ग्रन्थसे संग्रह करके भेजी थी वह ली है, और "तीर्थ

वन्दना" स्वर्गीय वयोवृद्ध मुनिश्री चंद्रसागरजी नित्य मुखपाठ करते थे तब विक्रम सं० १९७८ फाल्गुन सुदी १५ को किसीने लिख ली थी वह भाई झवेरलालजी गांधीने संग्रह करके भेजी थी उसे भी प्रगट किया है। तथा विशेष सुभीतेके लिये इस ग्रन्थमें सामायिकपाठ भाषा व संस्कृत, तथा आलोचनापाठ भी शामिल कर दिया है और "मेरी-भावना" भी प्रारम्भमें प्रकट की है। सारांश यह है कि चारों संघ (मुनि, अर्जिका, श्रावक—श्राविका) को सामायिक प्रतिक्रमण आदि यथाशक्ति विधिपूर्वक व समझपूर्वक होसके ऐसा सुभीता इस ग्रन्थमें कर दिया गया है।

आशा है कि इस ग्रंथसे दि० जैन समाजमें बृहत् सामायिक प्रतिक्रमणका सुलभतया अच्छा प्रचार हो सकेगा। इस ग्रंथके प्रकाशनमें जो कुछ त्रुटि रह गई हो तो उसकी सूचना हमें देनेपर उसे आगामी आवृत्तिमें सुधारनेका प्रयत्न किया जायगा।

अन्तमें भाई झवेरलाल रीखबदासजी गांधीको इस ग्रन्थके प्रकाशनमें उत्तेजना व सहायता देनेके लिये धन्यवाद देकर इस बृहत् सामायिक प्रतिक्रमणका घर २ में प्रचार हो यही भावना भाते हैं।

निवेदक—

वीर सं० २४६६
भादों वदी ५
ता० २३-८-४०.

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
—प्रकाशक।

सामायिक करनेकी विधि।

जैसे मुनिके लिये आवश्यक है कि वह त्रिकाल सामायिक करे, वैसे ही अगारी (श्रावक) के लिये भी नित्य सामायिक करनेकी आवश्यक्ता है। जो तृतीय प्रतिमाधारी श्रावक हैं उनको नित्य त्रिकाल सवेरे, दोपहर, और सांझको कमसे कम जघन्य एक मुहूर्त अर्थात् दो घड़ी (४८ मिनट) प्रतिकाल सामायिक करना उचित है। सामायिकका मध्यमकाल ४ घड़ी और उत्कृष्ट ६ घड़ी है। तथा जो तीसरी श्रेणीसे नीचेके श्रावक हैं, वे अपनी शक्ति और इच्छाके अनुसार सामायिकका अभ्यास करनेवाले हैं। ऐसे अभ्यास करनेवाले कमसे कम एक काल भी सामायिक करते हैं तथा उनके लिये ४८ मिनटका नियम भी नहीं है। वे अपने अवकाशके अनुसार अधिक वा कम भी समय लगा सकते हैं। सामायिकका अभ्यास प्रत्येक श्रावक श्राविकाको करना उचित है, क्योंकि श्रावकके जो नित्यके षट्कर्म हैं उनमेंसे तप करना सामायिकमें गर्भित है।

प्रथम ही शुद्ध वस्त्र पहिने हुए ऐसे एकान्त स्थानमें जावे, जहां डॉस मच्छरकी बाधा न हो, अधिक शीत वा उष्णता न हो, स्त्री वा नपुंसकोंका आना जाना न हो और कोलाहल न हो। ऐसा स्थान जिनमंदिर, धर्मशाला या अपने ही घरका कोई एकांत प्रदेश हो। प्रातःकालका समय सबसे उत्तम है। बिछौनेपरसे उठते ही यदि गृहस्थ स्त्रीसंभोगसे मलिन नहीं है तो हाथ पैर धोकर, और वस्त्र यदि अपवित्र हैं तो उनको भी बदलकर तथा स्त्रीसंभोग किया हो तो थोड़े जलसे स्नानकर कपड़े बदलकर सूखी घासके वा डाभके आसनपर या चटाईपर या काठपर या भूमिपर ही सामायिक करे।

सामायिक करनेवाला आसनके ऊपर पूर्व वा उत्तर दिशाको मुखकर पहिले दोनों हाथ लटकाके अपने दोनों पैरोंके आगेके भागको ४ अंगुलके अन्तरसे रक्खे। सीधी छाती वा मुखकर दृष्टि नासापर धर कायोत्सर्गसे खड़ा हो और मनमें प्रतिज्ञा करे कि:—जबतक सामायिककी क्रिया करूंगा, तबतक अथवा इतने समयतक मुझे अन्य स्थानका वा परिग्रहका त्याग है। फिर ९ वार णमोकार मंत्र धीरेसे अथवा मनमें पढ़के साष्टांग नमस्कार (दण्डवत्) करे। (दो पैर, दो बाहु, पीठ, कमर, मस्तक और छाती इन आठ अङ्गोंको नमानेके लिये घुटनेसे बैठकर हाथ जोड़ अंग झुकाना, पगके तलवे ऊपर कर मस्तक भूमिपर रखना, माथा दोनों भुजाओंके बीचमें आजावे)। फिर उसी तरह खड़ा हो ९ वार अथवा ३ वार णमोकार मंत्र पढ़कर पूर्व या उत्तरकी दिशामें दोनों हाथ जोड़ तीन आवर्त्त और शिरोनति करे। आवर्त्तके माने यह है कि दोनों हाथ जोड़ उन जोड़े हुए हाथोंको बांई तरफसे दाहिनी तरफको घुमावे।

इस क्रियाको तीन वार करे। फिर खड़े २ अपना मस्तक नवाके उस मस्तकको दोनों जोड़े हुए हाथोंपर रक्खे। इस क्रियाको शिरोनति कहते हैं। इन दोनों क्रियाओंका मतलब यह है कि मैं मन वचन और कायसे इस दिशासम्बन्धी समस्त सिद्धक्षेत्र, अतिशयक्षेत्र, अकृत्रिम तथा कृत्रिम जिनमंदिरोंको व मुनिमहाराजोंको नमस्कार करता हूं। पूर्व या उत्तरकी ओर ऐसा करके फिर उसी दिशासे दाहिने हाथकी तरफकी दिशाको हाथ लटकाए हुए खड़ा२ मुड़े, अर्थात् यदि पहिले पूर्व दिशाकी ओर मुंह कर खड़ा है तो दक्षिणकी तरफ मुड़े और पहिलेकी तरह ९ या ३ वार णमोकार मंत्र पढ़कर तीन आवर्त्त और एक शिरोनति करे। इसीप्रकार चारों दिशाओंमें समाप्त कर अर्थात् यदि पहले पूर्वकी ओर मुंह करके

खड़ा है जो पश्चिम और उत्तरमें भी ऐसा ही करके जिधर पहिले मुँह किया था उधर पद्मासन कर बैठ जावे।

पद्मासन इसको कहते हैं कि पहिले दाहिनी जांघपर बांया पैर रक्खे फिर ऊपर दाहिना पग बांई जांघपर रक्खे। गोदमें बायां हाथ नीचे रख ऊपर दाहिना हाथ अर्थात् बाई हथेलीपर दाहिनी हथेली रक्खे और सीधा बैठे। यदि पद्मासन न बैठ सके, तो अर्द्ध-पद्मासन या पल्यंकासन बैठे। इस आसनमें बायां पैर जांघके नीचे तथा दाहिना ऊपर रक्खे और हाथोंको पद्मासनकी तरह रक्खे। शान्त मन हो करके सामायिक पाठ प्राकृत, संस्कृत वा भाषा धीरे२ पढ़े। यदि जबानी याद न हो, तो पुस्तक हाथमें लेकर या साम्हने चौकीपर विराजमान करके पढ़े। फिर णमोकार मन्त्रकी अथवा अन्य छोटे मन्त्रकी कमसेकम एक माला जपे। मालामें १०८ दाने होते हैं। इस जापको हाथोंकी उंगलियोंपर भी कर सकते हैं। यदि मनमें ही करना हो तो इस तरह करें—
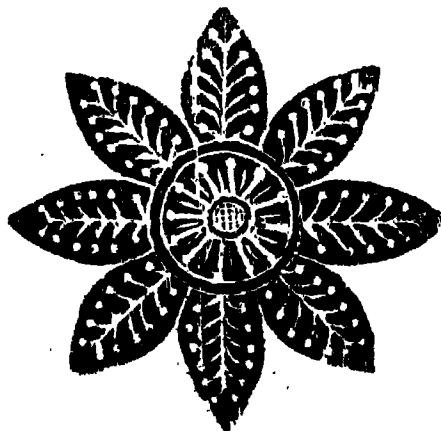
हृदयमें आठ पांखड़ीका श्वेत-कमल विचार करके उसकी हरएक पांखड़ीपर पीले रंगके बारह बिन्दु (छह एक ओर और छह दूसरी ओर) विचारे और कमलके बीचमें दो दो पत्तोंकी जड़में तीन तीन बिन्दु अर्थात् बारह बिन्दु विचारें। सर्व १०८ बिन्दु पीले रंगके ध्यानमें रखके पहिले पूर्व दिशासे शुरू करके हरएक पत्तेपरके बारह २ बिंदुओंपर हर बार णमोकार मन्त्र पढ़ता जाय। इसका चित्र ऊपर दिया है। इस तरह १०८ बार पूरा करके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका स्मरण करले। यह कमलकी जाप है। माला सफेद सूतकी या दूसरी हलकी लेनी चाहिये। दाहिने हाथमें लेकर जपे और बायां हाथ आसनपर जमा रक्खे। जाप देनेके पीछे स्थिर हो बारह भावनाओंका वा षोड़श-कारण भावनाओंका वा दशलाक्षणिक धर्मका वा पिण्डस्थादि ध्यान वा निज आत्माका चिंतवन करे। पिंडस्थ ध्यानकी पार्थिव आदि पांच धारणाएं ध्यान सिद्धिके लिये बहुत उपयोगी हैं, उनका स्वरूप व चित्र जैनधर्म प्रकाश व तत्त्वभावना ग्रन्थसे जानें। फिर अन्तमें खड़ा हो कायोत्सर्ग करे। शरीरसे आत्माको जुदा जाने और कमसे कम ९ बार णमोकार मन्त्र पढ़कर जैसे पहिले साष्टांग दण्डवत की थी वैसा करे। यहांतक सामायिककी विधि है।

इसके बाद अपनेको रात्रिमें तथा दिनमें लगे हुए दोषोंके प्रायश्चित्तके लिये प्रतिक्रमण करना चाहिये। यदि यह न हो सके तो आलोचना पाठ तथा "मिच्छामि दुक्कडं" का पाठ अवश्य करना चाहिये।

प्रतिक्रमण करनेकी विधि।

प्रतिक्रमण किसको कहते हैं ? और वह क्यों करना चाहिये तथा उसकी विधि क्या है यह बतलाना आवश्यक होनेसे यहां प्रतिक्रमणका स्वरूप और उसकी विधि बताई जाती है–

प्रतिक्रमणका "अपने भले बुरे किये हुए (कृतकर्म) कर्मोंका आत्मनिंदा पूर्वक त्याग करनेका भाव–आत्माका ऐसा विशुद्ध परिणाम कि जिसमें अशुभ क्रियाओंकी निवृत्ति हो" यह वाच्यार्थ है। इस प्रकारके भाव भेदविज्ञानको उत्पन्न करते हैं।

प्रतिक्रमण षट् आवश्यकोंके अन्तर्गत एक भेद है। षट् आवश्यकोंका पालन करना गृहस्थ और मुनियोंके लिये नितान्त आवश्यक है। इतना ही नहीं, किन्तु प्रतिक्रमण करनेसे आत्मोन्नतिके साथ२ भावोंकी विशुद्धि और कर्मोंकी निर्जरा सातिशय होती है।

जीवमात्र सुख और शान्तिका मार्ग अन्वेषण करते हैं। सुख और शांतिका प्रधान मार्ग वीतरागता–कषायोंकी निवृत्ति है। कषायोंकी विजय १–पापाचरणोंसे भय, २–विषयोंसे निवृत्ति, ३–ममत्वत्याग, ४–स्वात्मबोध और ५–स्वात्मगुण चिन्तवन करनेसे होती है। प्रतिक्रमण करनेसे उक्त पांचों कार्य स्वयमेव सिद्ध होते हैं। **प्रतिक्रमण आत्मसाधनका और निर्वाणपदका मुख्य अंग माना गया है।**

अनादि कालसे यह जीव हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पंच पापोंमें निमग्न होरहा है। और इससे ही जन्म मरणके भयंकर दारुण दुःखोंको उठा रहा है। प्रतिक्रमण करनेसे **हिंसादि व्यापारोंसे ग्लानि, पापकर्मोंसे भय और अशुभ**

क्रियाओंसे विरक्तबुद्धि उत्पन्न होती है। प्रतिक्रमण करनेवाला भव्य जीव अपने प्रत्येक कार्यको विचारता है कि यह कार्य करनेसे मेरे पापाचरणोंकी वृद्धि होगी इसलिये मैं इसका त्याग करूं। मानसिक व्यापार व संकल्प विकल्पोंसे भी वह भयभीत होता है। प्रतिक्रमण करनेवाला जीव पंचेन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त होता है और ऐसे कारणकलापोंका परित्याग करता है जो विषयोंके बढ़ानेवाले हैं। पापाचरण और विषयोंके सेवन करनेसे व्यामोह बढ़ता है इसलिये आत्मबोध जागृत नहीं होता है। प्रतिक्रमण करनेसे पर पदार्थोंसे मोहका नाश होता है, इसलिये स्वात्मबोधकी प्राप्ति होती है जिससे श्री अरहंत परमात्माकी भक्ति, रत्नत्रयकी पवित्र भावना और स्वात्म-धर्ममें दृढ़ता प्राप्त होती है, देह भोगादिकोंसे विरक्तता, कषायोंकी विजय, सुख और शांतिके मार्गका विकाश होता है।

मन वचन और शरीरके व्यापारोंका पुद्गल परमाणुओंपर गहरा असर पड़ता है। आत्मामें कषायोंकी सचिक्कणता होनेसे उन पुद्गल परमाणुओंका आत्माके साथ घनिष्ट संबन्ध होजाता है और वही संबन्ध आत्मगुणोंका सुख और शांतिका घात करता है। इसलिये कषायोंकी विजय करना और मन वचन कायके व्यापारोंको रोकना ही यथार्थ सुख और शांतिका मार्ग है। प्रतिक्रमण करनेसे कषायोंकी विजय होती है, सुख और मार्ग विकाशको प्राप्त होता है इसलिये प्रतिक्रमण करना परमावश्यक कार्य है।

प्रतिक्रमण-स्वात्म शिक्षक है इससे अपने आप अपने दुष्कृत्योंकी शिक्षा ली जासक्ती है। स्वात्म गुणोंके विकाशकी शिक्षा भी मिलती है। प्रतिक्रमण करनेके लिये सबसे प्रथम बाह्यशुद्धि पर पूर्ण ध्यान देना चाहिये। क्योंकि शुभाशुभ निमित्त ही आत्माको भले बुरे मार्गमें ले जानेवाले होते हैं।

बाह्यशुद्धि—आत्मभावोंको विशुद्ध रखती है। इसलिये शरीर शुद्धि वचन शुद्धि और मन शुद्धि जिस प्रकार सर्वोत्तम रहें उस प्रकार बाह्यशुद्धिको करना चाहिये। भोजन शुद्धि मनशुद्धिका कारण है, इसलिये आहारपानशुद्धि, स्नानशुद्धि, वस्त्रशुद्धि, स्थानशुद्धि, जिनागमकी आज्ञानुसार विचार शुद्धि और वचन शुद्धि रखनी चाहिये। अपने भावोंको विशुद्ध करनेके लिये जो कुछ भले बुरे काम किये हों उनका विचार (स्मरण) करना चाहिये। भविष्यमें ऐसे बुरे कार्य न हों ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करनी चाहिये। इस प्रतिज्ञाको दृढ़तर बनानेके लिये स्वात्मविश्वास पूर्वक वीतराग प्रभुके गुणोंकी भावना निरंतर भानी चाहिये। अपने दुष्कृत्योंको निवेदन करना चाहिये, मनन करना चाहिये और परित्यागके लिये तत्पर रहना चाहिये। नैष्ठिक श्रावक और मुनियोंके व्रत नियमसे होते हैं, उनके व्रतोंमें अतीचारादि दोषोंका उद्भाव होना संभव है, इस लिये उनको अपने व्रतोंकी विशुद्धिके लिये प्रतिक्रमण करना चाहिये। परन्तु पाक्षिक श्रावकोंके व्रतमें अभ्यास मात्र ही होता है अतएव व्रतोंको दृढ़ बनानेके लिये तथा दोषोंके विचारके लिये प्रतिक्रमण करना नितान्त आवश्यक है, एवं व्रतोंकी भावना भी व्रतका एकदेश पालन करना है। प्रतिक्रमण करनेसे व्रतोंकी (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रहत्याग) भावना पुष्ट होती है।

प्रतिक्रमण दैनिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक भेदोंसे अनेक प्रकार है। चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमणमें पूरी जाप्य १०८ देना चाहिये, अवशेषमें १८-२७-२६ भी देते हैं।

प्रतिक्रमण करनेमें "णमोकार मंत्र" को स्पष्ट बोलना चाहिये और जहांतक हो पंचपरमेष्ठीके गुणोंका चिंतवन विशेष ध्यानपूर्वक करना चाहिये।

कितने ही स्थलों पर "णमो अरहंताणं" से प्रारंभ कर यावंति जिनचैत्यानि विद्यन्ते भुवनत्रये। तावंति सततं भक्त्या त्रिःपरीत्य नमाम्यहं" यहां पर्यन्त पाठको पढ़ना चाहिये।

प्रतिक्रमणका समय कमसे कम दो घड़ी है। इससे कम समयमें प्रतिक्रमण नहीं होता है। ये दो घड़ी प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकालके समयका लेना चाहिये।

प्रतिक्रमण करते समय इन बातोंका विशेष ध्यान रखना चाहिये—

(१) व्यापार, गृह और इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग सम्बन्धी आकुलभावको छोड़ देनी चाहिये।

(२) पुत्र, मित्र, भाई, बंधु और कुटुंब परिवारोंकी चिंता छोड़कर प्रतिक्रमण करना चाहिये।

(३) मनको वशकर सावधानीसे प्रतिक्रमण करना चाहिये।

(४) उत्साह और प्रेमसे प्रतिक्रमण करना चाहिये। आलस्य और अनादर प्रतिक्रमणके घातक हैं।

(५) आसन ठीक रखना चाहिये। परिग्रहका परिमाण करना चाहिये।

(६) कायोत्सर्ग—शरीरसे ममत्व त्याग करनेके लिये उप-सर्गोंको जीतनेका प्रयत्न और अभ्यास डालना चाहिये।

(७) णमोकारमंत्र, २७ श्वासोश्वासमें जपना चाहिये। शीघ्रता, अस्थिरता और कायरताको दूरकर प्रतिक्रमण करना चाहिये।

(८) प्रतिक्रमणके लिये जिनमुद्रा (नासिकाग्र दृष्टि) का धारण करना और शांतिसे विषयकषायोंको जीतनेका विशेष उद्योग करते रहना चाहिये।

(९) प्रतिक्रमण पाठको और उसके अर्थको मनन करते हुए प्रतिक्रमण करना चाहिये।

(१०) समस्त जीवोंमें प्रेमभावना, गुणीजनोंमें भक्ति भावना, दुखी (अज्ञान और कुचारित्रसे दुःखी) जीवोंमें करुणा भावना और मात्सर्य जीवोंमें साम्य भावना रखकर प्रतिक्रमण करना चाहिये।

(११) अपने दोषोंका बार२ विचार करना चाहिये।

(१२) जहां पर कायोत्सर्ग आवे वहां पर णमोकार मंत्रकी जाप्य ९ बार देना चाहिये परंतु वीर भक्तिमें १८-२७-२६-१०८ आदिका क्रम जैसा प्रतिक्रमण करना हो देनी चाहिये।

णमोकारमंत्र—नववार २७ श्वासोच्छ्वास सहित पढ़ा जाता है वह २७ श्वासोच्छ्वास इसप्रकार होते हैं—

णमोकारमंत्रके ६ भागसे ६ पद करें, फिर उन छः भागोंके दो दो भाग करके एक भागका चिंतवन करते हुए ऊंचा श्वास लेना और दूसरा भाग चिंतवन करते समय नीचा श्वास लेना। जैसे कि—णमो अरिहंताणं यह पद मनमें चिंतवन कर ऊंचा श्वास लेवे और णमो सिद्धाणं यह पद मनमें चिंतवन कर नीचा श्वास लेवे। इसप्रकार णमो आयरियाणं यह पद ऊंचे श्वाससे और णमो उवज्झायाणं यह पद नीचे श्वाससे, णमो लोए यह पद ऊंचे श्वाससे और सव्वसाहूणं नीचे श्वाससे पढ़े, इसप्रकार नवबार जाप करे।

कायोत्सर्ग—करनेकी विधि इस प्रकार है—प्रथम खड़े होकर जिनमुद्रा (दोनों पांवके अंगूठोंका अन्तर चार अंगुलका रखना) करके स्थिर रहे व दृष्टि नासिकाके अग्र भागपर रक्खे तथा उस समय अपने दोनों ओष्ठ बंद रखे लेकिन दांत परस्पर स्पर्श न करें ऐसे रखना चाहिये। तथा हाथ लटकाकर सीधे रखना चाहिये। फिर २७ श्वासोच्छ्वास पूर्वक णमोकार मंत्र चिंतवन करना चाहिये।

उपवासका पच्चक्खाण।

इच्छेहभत्तपच्चक्खाणं, सेअसणं वा, पाणं वा, खादं वा, सादं वा, तित्तं वा, कडुयं वा, अंबिलं वा, महुरं वा, लवणं वा, अलवणं वा, सचित्तं वा, अचित्तं वा, तं सव्वंचउव्विहं आहारं, अज्जपच्चक्खाणे, [१]जलंविना, कल्ले उपवासे, परे उग्गदेसूरे, पडिपुण्णे, पारणं करेज्ज। जदि अंतरं कालं हवदि तदा अणसणं होज्ज। धम्मोतिकिच्चा, णियमोतिकिच्चा, संजमोतिकिच्चा, तपोतिकिच्चा, अरहंतसक्खियं, सिद्धसक्खियं, साहुसक्खियं, अप्पसक्खियं परसक्खियं, देवतासक्खियं, दुक्खक्खउ, कम्मक्खउ, बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं जिनगुण-संपत्तिहोउ [२]तुम्भं, ते भवतु, ते भवतु, ते भवतु ॥ १ ॥

पोसह (प्रोषधोपवास) करनेका पच्चखाण।

इच्छेह उत्तमं पोसहं, सव्वं सावज्ज जोगं पच्चक्खाणं, करेह, सुत्तत्थं आचारं, धर्मज्झरणं, धरेह, पंच परमेट्ठिसक्खियं ते मे भवतु ॥

पोसह पाडनेका (पूर्ण करनेका) पच्चखाण।

पारेमि पोसहं, अण्णाणेण वा प्रमादेण वा, अमत्थ भावेण वा, पोसहम्मि, जं किंपि सुत्तत्थं, आचारं ण, कयंतं, तस्स मिच्छामि दुकडं ॥

१—यदि एक दफे जल पीनेकी छूट रक्खा हो तो 'जल विना' यह पद न पढ़ें। २—अपने आप पच्चखाण लेना हो तो 'मज्झं' ऐसा पढ़े।

विषय-सूची।

शुद्धिपत्र।

पृष्ठ	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
१	५	वह	कह
१	८	संस्थाप्प	संस्थाप्य
६	९	शीघ्र	शीघ्रं
,,	१६	मंगलब्ध	मंगलब्ध
७	१२	मृगद्र	मृगेंद्र
१०	१२	ऽभ्मस्मि	उज्झमि
१४	१	मामाप्यते	माप्यते
१५	९	क्षयाथ	क्षयार्थं
१७	१२	भयवंताण	भयवंताणं
२२	१	धम्मः	धर्म्मः
,,	२	क्लशा	क्लेशा
२५	१	मदिरेषु	मंदिरेषु
,,	३	वदे	वंदे
,,	९	द्युतिमंड	द्युतिमंडल
२७	१	सपदाम्	संपदाम्
,,	२	कीत्त	कीर्त्त
,,	१३	वदे	वदे
२९	१	तीर्थ	तीर्थं
३०	९	शौव	शौव
३२	१९	चदन	चंदन
३३	२	मपक्षणानां	मपीक्षणानां
३८	१७	वडमाण	वड्ढमाण
४७	१	बल	बलं
४९	१७	णिकालं	णिच्च कालं

पृष्ठ	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
७४	१६	त्रलोक्यं	त्रैलोक्यं
७८	१८	गथ	गंथ
७९	१६	अणग	अणंग
८६	१६	पडित मरण	पंडित मरणम्
८९	१३	अजलि	अंजलि
११४	७	विरदेदे	विरदो य
११७	१५	सर्व	सर्व
१२७	१२	ससारे-बहुवार	संसारे-बहुवारं
१७०	२२	निम्मित	निर्म्मित
१७६	१६	निरर्थक	निरर्थकं

मेरी भावना

जिसने रागद्वेषकामादिक जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवोंको मोक्षमार्गका, निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति-भावसे प्रेरित हो यह, चित्त उसीमें लीन रहो ॥१॥
विषयोंकी आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं,
निज-परके हित-साधनमें जो, निशदिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थत्यागकी कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगतके, दुख समूहको हरते हैं ॥२॥
रहे सदा सत्संग उन्हींका, ध्यान उन्हींका नित्य रहे,
उन ही जैसी चर्यामें यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।
नहीं सताऊँ किसी जीवको, झूठ कभी नहिं कहा करूँ,
परधन-वनिता पर न लुभाऊँ, सन्तोषामृत पिया करूँ ॥३॥
अहंकारका भाव न रक्खूँ, नहीं किसीपर क्रोध करूँ,
देख दूसरोंकी बढ़तीको, कभी न ईर्षा-भाव धरूँ।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य-व्यवहार करूँ,
बने जहांतक इस जीवनमें, औरोंका उपकार करूँ ॥४॥
मैत्रीभाव जगतमें मेरा, सब जीवोंसे नित्य रहे,
दीन-दुखी जीवों पर मेरे, उरसे करुणा-स्रोत बहे।
दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतोंपर, क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूँ मैं उनपर, ऐसी परिणति हो जावे ॥५॥
गुणीजनोंको देख हृदयमें, मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहाँतक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।

होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण–ग्रहणका भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥६॥
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आजावे।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे,
तो भी न्यायमार्गसे मेरा, कभी न पद डिगने पावे ॥७॥
होकर सुखमें मग्न न फूले, दुखमें कभी न घबरावे,
पर्वत-नदी-श्मशान-भयानक, अटवीसे नहिं भय खावे।
रहे अडोल-अकंप निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे,
इष्टवियोग–अनिष्टयोगमें, सहनशीलता दिखलावे ॥८॥
सुखी रहें सब जीव जगतके, कोई कभी न घबरावे,
वैर-पाप-अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे।
घर घर चर्चा रहे धर्मकी, दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज-जन्मफल सब पावें ॥९॥
ईति भीति व्यापे नहिं जगमें, वृष्टि समयपर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजाका किया करे।
रोग-मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शांतिसे जिया करे,
परम अहिंसा-धर्म जगतमें, फैल सर्वहित किया करे ॥१०॥
फैले प्रेम परस्पर जगमें, मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय-कटुक कठोर शब्द नहिं, कोई मुखसे कहा करे।
बनकर सब 'युग-वीर' हृदयसे, देशोन्नतिरत रहा करें,
वस्तुस्वरूप विचार खुशीसे, सब दुख-संकट सहा करें ॥११॥

बृहत् सामायिक पाठ।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ३.

जय जय जय, निस्सही निस्सही निस्सही।

अर्थः—जय जय जय कहकर तीनवार नैषेधकी करें।

निःसंगोऽहं जिनानां सदनमनुपमं त्रिःपरीत्यैत्य भक्त्या। स्थित्वा गत्वा निषिद्ध्युच्चरणपरिणतोऽन्तः शनैर्हस्तयुग्मं॥ भाले संस्थाप्य बुद्ध्या मम दूरितहरं कीर्तये शक्रवंद्यं। निंदा दूरं सदाप्तं क्षयरहितममुं ज्ञानभानुं जिनेंद्रम् ॥१॥

अर्थः—संगरहित ऐसा मैं भगवंतके मंदिरमें जाकर तीन प्रदक्षिणा करके, भक्तिसे खडा रहकर भीतर अच्छे परिणामोंसे निस्सहीका उच्चारण करके शनैः शनैः दो हाथ ललाटपर रखके मेरे पापके हरनेवाले, इन्द्रको वंदन करने

योग्य, निद्रासे दूर रहनेवाले, सदा हितकारी क्षय रहित और ज्ञानके सूर्यरूप ऐसे जिनेंद्र भगवंतका मैं कीर्तन करता हूं ॥१॥

पडिक्कमामि भंते इरियावहियाए विराहणाए अणागुत्ते अइगमणे णिग्गमणे ठाणेगमणे चंकमणे पाणुग्गमणे विज्जुग्गमणे हरिदुग्गमणे उच्चारपस्सवण खेलसिंहाणय वियडिपईठावणिया ए जे जीवा एइंदियावा बेंदियावा तेंदियावा चउरिंदियावा पंचेंदियावा पणोल्लिदावा पेल्लिदावा संघदिदावा संघादिदावा उद्दादिदावा परिदाविदावा किरिच्छिदावा लेसिदावा छिंदिदावा भिंदिदावा ठाणदोवा ठाणचंकमणदोवा तस्सुत्तरगुणं तस्स पायछित्तकरणं तस्स विसोहिकरणं जावअरहंताणं भयवंताणं णमोकारं पज्जुवासं करेमि तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

अर्थः—हे भगवन् ! मैं प्रतिक्रम करता हूं, निवर्तता हूं, मार्गमें गमन है प्रधान जिसमें ऐसे जंतुओंकी विराधनासे अनुपयोगमें, अतिशय गमन करनेमें, निकलनेमें, मिथ्यात्वके स्थानपर गमन करनेमें, वहीं हिरने फिरनेमें, प्राणीको रौंदनेमें,

बीजको गोंदनेमें, नीलवर्णवाली ऐसी जो मूल स्कंधादि दश प्रकारकी वनस्पतिको पगसे पेंदनेमें, मलमूत्र करनेमें, मुखका कफ तथा नासिकाकी नीक काढनेमें, विकृति करनेमें जो जीव, जिनके शरीररूप इंद्रिय एक हो वह, जिसको शरीर और मुख ये दो इंद्रिय हो वह, जिसको शरीर, मुख और नासिका ये तीन इंद्रिय हो वह, जिसके शरीर, मुख, नासिका और नेत्र ये चार इंद्रिय हो वह, जिसके शरीर, मुख, नासिका, नेत्र, और कान ये पांच इंद्रिय हो वह प्रणोदित किये गये, इकट्ठे किये गये, संघट्ट किये गये, उपद्रव किये गये, परितापित किये गये, कलेश किये गये, भूमिके साथ रोंदे गये, छेदे गये, भेदे गये, स्थानभ्रष्ट किये गये, एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाते हुए, उसके उत्तरगुणके लिये उसे प्रायश्चित्त करनेको, उसेही शोधन करनेको जहां तक अरिहंत भगवानके पंचपद रूपी जो णमोकार उसको मुखमेंसे उच्चार करुं वहां-तक पाप कर्मको, दुष्ट कर्मको त्याग करता हूं।

जय अर्हम् ३ णमो अरहंताणम् आदि जाप्य ९ उच्छ्वास २७.

वसंतिलकावृत्तम्।

इर्यापथे प्रचलताद्य मया प्रमादा-
देकेंद्रियप्रमुखजीवनिकायबाधा ॥
निर्वर्त्तिता यदि भवेदयुगान्तरेक्षा।
मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ॥२॥

अर्थः—ईर्यापथके मार्गमें चलनेवाला ऐसा मैंने प्रमादसे एकेंद्रिय आदि जीवनिकायको कभी जो कुछ बाधा की हो अथवा युगके अंतरपर दृष्टि करके देखा न हो तो उससे हुआ मेरा जो पाप वह गुरुकी भक्तिसे मिथ्या हो ॥२॥

करचरणतनुविघातादटतो निहतः प्रमादतः प्राणी।
ईर्यापथमिति भीत्या मुञ्चेत्तद्दोषहान्यर्थं ॥३॥

अर्थः—हाथ, पांव और शरीरके विघातसे चलते फिरते जंतुओंको प्रमादसे हननेवाला ऐसा प्राणी भयसे उसके दोषकी हानिके अर्थ ईर्यापथको छोड़ देता है ॥३॥

इच्छामि भंते इरियावहियस्स आलोचेउं पुवुत्तर दक्षिण पच्छिम। चउदिसु विदिसासु विहरमाणेण जुगंतरदिठिणा दठव्वा डवडवचरियाए पमाद दोसेण। पाणभूदजीवसताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा। समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥३॥

अर्थ—हे भदंत ! मैं इच्छा करता हूं ईर्यापथकी आलोचना करनेकी। पूर्व, उत्तर, दक्षिण और पश्चिम इन चार दिशाओंमें, विदिशाओंमें विहार करते, युगांतरसे दृष्टि करके, देखनेको पद पद पर गति करते, प्रमाद दोषसे प्राणीरूप

जीवोंकी सत्ताके विषयमें जो उपघात दोष हुआ हो, किया हो, कराया हो, अनुमोद्या हो वे मेरे दुष्कृत्य मिथ्या हों ॥१॥

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन् पादद्वयं ते प्रजाः
हेतुस्तत्र विचित्रदुःखनिचयः संसारघोरार्णवः।
अत्यंतस्फुरदुग्ररश्मिनिकरव्याकीर्णभूमंडलो
ग्रैष्मः कारयतींदुपादसलिलच्छायानुरागं रविः॥४॥

अर्थः—हे भगवन्! प्रजागण स्नेहसे आपके चरण-द्वयकी शरणमें नहीं आते, लेकिन जो शरणमें आते हैं उसका कारण विचित्र दुःखोंके समूहसे भरा हुआ संसाररूप घोर समुद्र ही है। जैसे स्फुरायमान होने वाले ऐसे अपने बहुत तीव्र किरणोंके समूहसे सर्व भूमंडलको प्राप्त करनेवाला ऐसा ग्रीष्म ऋतुका सूर्य, लोगोंको चंद्रके किरण, जल और छायाके ऊपर प्रीति उपजाता है ॥४॥

क्रुद्धाशीविषदष्टदुर्जयविषज्वालावलीविक्रमो।
विद्याभेषजमंत्रतोयहवनैर्याति प्रशांतिं यथा।
तद्वत्ते चरणारुणांबुजयुगस्तोत्रोन्मुखानां नृणाम्
विघ्नाः कायविनायकाश्च सहसा शाम्यन्त्यहो
विस्मयः ॥५॥

अर्थः—क्रोधित हुए सर्पका डंश, दुर्जय विष, अग्निकी

ज्वालाकी श्रेणि और विक्रम ये सर्व विद्या, औषध, मंत्र, जल और यज्ञ करके जैसे शांत होते हैं वैसे हे भगवन्! आपके चरणरूप लाल कमलकी स्तुति करनेमें जो पुरुष तत्पर हैं उनके विघ्न तथा शरीरके रोग तत्काल शांतिको प्राप्त होते हैं, यह बडा आश्चर्य है ।५॥

संतप्तोत्तमकांचनक्षितिधरश्रीस्पर्द्धिगौरद्युते।
पुंसां त्वच्चरणप्रणामकरणात्पीडाः प्रयांति क्षयम्।
उद्यद्भास्करविस्फुरत्करशतव्याघातनिष्काशिता
नानादेहिविलोचनद्युतिहरा शीघ्र यथा शर्वरी ।६॥

अर्थः—ताये हुए सुवर्णके पर्वतकी शोभाकी स्पर्धा करनेवाली जिनकी गौर कांति है ऐसे हे भगवन्! जैसे अनेक प्रकारके प्राणियोंके लोचनकी कांतिको हरनेवाली रात्रि तत्काल उदय होते सूर्यके स्फुरायमान होते हुऐ सैकडो किरणोंके व्याघातसे नाश पाती है वैसे आपके चरणमें प्रणाम करनेसे मनुष्योंकी पीडाऐं तत्काल क्षय पा जाती हैं ॥६॥

त्रैलोक्येश्वरभंगलब्धविजयादत्यन्तरौद्रात्मका-
न्नानाजन्मशतांतरेषु पुरतो जीवस्य संसारिणः
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना कालोग्रदावानला-
न्न स्याच्चेत्तव पादपद्मयुगलस्तुत्यापगावारणम् ॥७॥

अर्थः—हे प्रभु ! यदि आपके चरणकमलकी स्तुतिरूप नदीका वारण न होता तो यह कालरूपी उग्र दावानल कि जो त्रलोक्यके ईश्वरका तप भंग करके विजयको प्राप्त है, जिसका अत्यंत भयंकर रूप है, और जो नाना प्रकारके सैंकडों जन्मोंके भीतर रहे हुए संसारी जीवोंके आगे ही रहा हुआ है उससे कौनसी विधिसे कौन प्राणी स्खलित होता है? अर्थात् कोई भी जीव यह कालरूप दावानलसे मुक्त नहीं होता है ॥७॥

लोकालोकनिरंतरप्रविततज्ञानैकमूर्ते विभो
नानारत्नपिनद्धदण्डरुचिरश्वेतातपत्रत्रय ।
त्वत्पादद्वयपूतगीतरवतः शीघ्रं द्रवंत्यामया
दर्प्पाध्मातमृगद्रभीमनिनदाद्वन्या यथा कुञ्जराः॥८

अर्थः—इस लोकालोकमें नित्य विस्तार पाये हुए ज्ञानकी एक मूर्त्तिरूप और अनेक प्रकारके रत्नसे जडित ऐसे दंडसे शोभायमान, तीन श्वेत छत्रोंको धारण करनेवाले हे भगवन् ! गर्वसे भरे हुए केशरी-सिंहके भयंकर शब्दसे जैसे वनके हाथी भाग जाते हैं वैसे आपके चरण संबंधी पवित्र गीतके शब्दसे सर्व रोग शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं ॥८॥

दिव्यस्त्रीनयनाभिरामविपुलश्रीमेरुचूडामणे
भास्वद्बालदिवाकरद्युतिहरप्राणीष्टभामण्डल ।

अव्याबाधमचिन्त्यसारमतुलं त्यक्तोपमं शाश्वतं
सौख्यं त्वच्चरणारविंदयुगलस्तुत्यैव संप्राप्यते ।९।

अर्थः—दिव्य स्त्रियोंके नेत्रोंको आनंद देनेवाला, बडी शोभारूप, मेरु पर्वतके मुकुटरूप, प्रकाशमान बाल सूर्यकी कांतिको हरनेवाला और प्राणियोंको इष्ट है भामंडल जिसका ऐसे हे प्रभु ! आपके चरणकमलोंकी स्तुतिसे पीडा रहित, अचिंत्य साररूप, अतुल्य और अनुपम ऐसा शाश्वत सुख प्राप्त होता है ।।९।।

यावन्नोदयते प्रभापरिकरः श्रीभास्करो भासयं
स्तावद्धारयतीह पंकजवनं निद्राति भारश्रमं ।
यावत्त्वच्चरणद्वयस्य भगवन्न स्यात्प्रसादोदय-
स्तावज्जीवनिकाय एष वहति प्रायेण पापं महत् ।१०।

अर्थः—हे भगवन् ! जहांतक कांतियोंके समूहरूप सूर्य प्रकाश करता हुआ उदयको प्राप्त नहीं होता वहांतक कमलका बन निद्राके अतीव भारका श्रम धारण करता है, उस प्रकार जहां तक आपके चरणोंका प्रसाद उदयको प्राप्त नहीं हुआ है वहांतक यह जीवनिकाय बड़ा पाप वहन करता है । १०।।

शान्तिं शान्तिजिनेंद्रशान्तमनसस्त्वत्पादपद्माश्रयात्
संप्राप्ता पृथिवीतलेषु बहवः शान्त्यर्थिनः प्राणिनः।

कारुण्यान्मम भक्तिकस्य च विभो दृष्टिं प्रसन्नां कुरु।
त्वत्पादद्वयदैवतस्य गदतः शांत्यष्टकं भक्तितः।११।

अर्थः—हे शान्ति जिनेंद्र! इस पृथ्वीतलमें शांतिको चाहनेवाले ऐसे बहुतसे जीव आपके चरणकमलके आश्रयसे शांत मनवाले होकर शांतिको पाये हुए हैं इससे हे विभु! आपके चरणकमल जिनके देव हैं और इस शांति अष्टकको भक्तिसे पाठ करनेवाला ऐसा मैं आपका भक्त हूं उसपर करुणासे प्रसन्नदृष्टि करें ॥११॥

नमः श्रीवर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते।१२।

अर्थः—जिनकी विद्या आलोक सहित तीनों लोकोंको दर्पणके सदृश आचरण करती है ऐसे, मलीन स्वरूपको दूर करनेवाले श्रीवर्द्धमानस्वामीको मैं नमस्कार करता हूं ॥१२॥

जिनेंद्रमुन्मूलितकर्म्मबन्धं। प्रणम्य सन्मार्ग-कृतस्वरूपम्॥ अनंतबोधादिभवं गुणौघं। क्रियाकलापं प्रकटं प्रवक्ष्ये ॥१३॥

अर्थः—कर्मके बंधनको मूलसे उखाडनेवाले और सन्मार्गमें अपने स्वरूपको करनेवाले ऐसे जिनेंद्र भगवंतको प्रणाम करके अनंत बोधकी आदिमें उत्पन्न हुए गुणोंके

समूहवाले सामायिक आदि क्रिया-कलापको मैं प्रगटरूपसे कहूंगा ॥ ११ ॥

खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु, वैरं मज्झ ण केण वि ॥१॥

अर्थः—मैं सर्व जीवोंको क्षमा करता हूं, सब जीव मुझे क्षमा करें, सब जीव मात्रके साथ मुझे मैत्री हैं. मुझे किसीके साथ वैरभाव नहीं है ॥१॥

रागबंधपदोसं च, हरिसं दीणभावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं, रदि मरिदं च वोस्सरे ॥२॥

अर्थः—रागबंधका दोष, हर्ष, दीनता, उत्सुकता भय और शोक उन्हें मैं हृदयसे निकालता हू ॥२॥

हा दुट्ठ कयं हा दुट्ठ चिंतियं, भासियं च हा दुट्ठं।
अंतो अंतो ऽज्झम्मि, पच्छुत्ता वेण वेयंतो ॥३॥

अर्थः—जो दुष्ट कार्य किया हो, जो दुष्ट चितवन किया हो, और जो दुष्ट कहा हो और जो कोई गुप्त रीतिसे दुष्ट कार्य हुआ हो उनको मैं दूर छोडता हूं ॥३॥

दव्वे खेत्ते काले, भावे य कदा वराहसोहणयं।
णिंदणगरहणजुत्तो, मणिवचिकाएण पडिक्कमणं ।४।

अर्थः—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें कभी किसीकी निंदा गर्हा की गई हो उनका मैं मन वचन और कायसे प्रतिक्रम करता हूं ॥ ४ ॥

अथ कृत्य प्रतिज्ञा भगवन्नमस्ते, एषोऽहं देववंदनां करोमि। इति सामायिकस्वीकारः।

अर्थः—अब इस कृत्यके करनेकी प्रतिज्ञा करता हूं—हे भगवन! मैं आपको नमस्कार करता हूं। यह मैं देववंदना करता हूं, इस प्रकार सामायिकका स्वीकार करें।

समता सर्वभूतेषु संयमः शुभभावना।
आर्त्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतम् ॥१॥

अर्थः—सब जीवोंपर समता रखना, संयम पालना, शुभ भावना धारण करनी, आर्त और रौद्र ध्यानका परित्याग करना यह सामायिक व्रत कहा जाता है ॥१॥

सिद्धं सम्पूर्णभव्यार्थं सिद्धेः कारणमुत्तमम्।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपादनम् ॥२॥
सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेशरम्।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमंगलम् ॥३॥

अर्थः—खुद सिद्धि प्राप्त हुए, भव्य अर्थसे संपूर्ण,

सिद्धिके उत्तम कारणरूप, श्रेष्ठ ऐसे ज्ञान दर्शन और चारित्रको प्रतिपादन करनेवाले, जिनके चरणकमलके किरणरूप केशरी इंद्रोंके मुकुटके साथ मिले हुए हैं और जो तीन लोकमें मंगल रूप हैं ऐसे महावीर भगवंतको मैं प्रणाम करता हूं ॥२-३॥

आदौ मध्येऽवसाने च, मंगलं भाषितं बुधैः।
तज्जिनेंद्रगुणस्तोत्रं, तदविघ्नप्रसिद्धये ॥४॥

अर्थः—आरंभमें, मध्यमें, और अंतमें मंगलाचरण करनेके लिये विद्वानोंने कहा है इसलिये निर्विघ्नपनेकी सिद्धिके लिये यहां श्रीजिनेंद्र भगवंतके गुणोंका स्तोत्र कहा गया है ॥४॥

विघ्नाः प्रणश्यन्ति भयं न जातु
न क्षुद्रदेवाः परिलंघयंति।
अर्थान् यथेष्टांश्च सदा लभंते।
जिनोत्तमानां परिकीर्त्तनेन ॥५॥

अर्थः—उत्तम तीर्थंकरोंका कीर्तन करनेसे विघ्नोंका विनाश होता है, कभी भी भय नहीं होता, नीच देवतागण पराभव नहीं करते और इच्छानुसार सब पदार्थोंकी प्राप्ति होती है ॥५॥

सिद्धेभ्यो निष्ठितार्थेभ्यो वरिष्टेभ्यः कृतादरः।
अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं नमस्कुर्वे पुनः पुनः ॥६॥

अर्थः—सब अर्थोंके विषयमें दृढ श्रद्धानवाले, उत्तम सिद्ध पुरुषोंको इच्छित अर्थकी सिद्धिके लिये मैं आदरसे वारवार नमस्कार करता हूं। ६॥

गाथा।

आईमंगलकरणे, सिरसा लहु पारया हवंतित्ति।
मज्झे अव्वुछित्ती, विज्जाविज्जाफलं चरमे ॥७॥
दुउण्णदं जहा जादं, बारसावत्तमेव य।
चदुस्सिरं तिसुद्धिं च, किरियम्मं पउं जदे ॥८॥
किरियम्मं पिकरंतो, णहोदिकिरियम्मणिज्जराभा-
गी। बत्ती साणण्णदरं, साहूठाणं विराहंतो ॥९॥
तिविहतियरणशुद्ध मयरहियं दुविहगणपुणरुत्तं।
विणएण कम्मविशुद्धं, किदिकम्मं होदिकायव्वं।१०।

संस्कृत श्लोक।

योग्यकालासनस्थानमुद्रावर्तशिरोनतिः।
विनयेन यथाजातः कृतीकर्मामलं भजेत् ॥१॥

अर्थः—योग्य काल, आसन, स्थान, मुद्रा, और आवर्तसें मस्तकको नमानेवाला और विनयसे वर्तनेवाला ऐसा कृतार्थ पुरुष निर्मल कर्मका भजन करता है ॥१॥

स्नपनार्चास्तुतिजपान् साम्यार्थं प्रतिमामाप्यते।
युज्यां यथाम्नायमाद्याद्दते सकल्पितेऽर्हति ॥२॥

अर्थः—प्रथम आदर किये हुए और संकल्पमें धारे हुए अरंहत भगवानमें मैं स्नान, अर्चा, स्तुति, जप, समता, कार्योत्सर्ग और तृप्ति, आम्नायानुसार अर्थात् शास्त्र मर्यादानुसार जोडता हूं ॥२॥

एकत्वेन चरन्निजात्मनि मनोवाक्कायकर्म्मच्युते।
कैश्चिद्विक्रियते न जातु यतिवद्यद्वागपि श्रावकः।
येनार्हच्छ्रुतलिङ्गवानुपरिमग्रैवेयकं नीयते
भव्योऽप्यद्भुतवैभवेऽत्र न सृजेत् सामायिकेकः
सुधीः ॥३॥

अर्थः—जो दो काल सामायिक करनेवाला श्रावक यतिकी माफिक मन वचन और कायके कर्मोंसे सहित ऐसे अपने आत्मामें कोईभी कभी विकारको प्राप्त नहीं हो सक्ता और उससे अरहंत श्रुतके लिंगको धारण करनेवाला पुरुष ग्रैवेयकसे ऊपर जाता हैं। ऐसे उसी अद्भूत वैभववाले दो कालके सामायिकको कौन सद्‌बुद्धिवाला भव्य पुरुष नहीं आचरण करेगा? अर्थात् उत्तम बुद्धिवाला पुरुष तो अवश्य आचरण करें ॥३॥

अथ कृत्यविज्ञापना भगवन्नमोस्तु प्रसीदंतु प्रभुपादा वंदिष्येहमिति एषोहं सर्व्वसावद्ययोग-विरतोस्मि ॥४॥

अर्थः—अब कृत्य करनेकी विज्ञापना करता है-हे भगवन्! मैं आपको नमस्कार करता हूं। आप पूज्यपाद प्रभु प्रसन्न हो। मैं वंदना करूंगा। यह सब मैं सावद्य योगोंसे विराम पाया हूं ॥४॥

अथ *पौर्वाह्णिकदेववंदनायां पूर्वाचार्या-नुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दना-स्तवसमेत श्री चैत्यभक्ति कायोत्सर्गं करोम्य-हम् ॥५॥

अर्थः—अब सुबहकी[1] देव-वंदनामें पूर्वाचार्योंके अनु-क्रमसे सकल कर्मोंके क्षयार्थ भावपूजा वंदना और स्तवन सहित श्रीचैत्य भक्तिके लिये मैं कायोत्सर्ग करता हूं ॥५॥

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरि-याणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

---

* पौर्वाह्णिक, मध्याह्णिक अथवा अपराह्णिक।

१ सुबह, मध्याह्न या शाम जो समय हो वह शब्द पढें।

इस प्रकार णमोकार मंत्र ९ वार पढे।

अर्थः—अरिहंतको नमस्कार हो, सिद्धको नमस्कार हो, आचार्यको नमस्कार हो, उपाध्यायको नमस्कार हो और सब लोकके विषे रहे हुए साधुओंको नमस्कार हो।

चत्तारिमंगलं अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहूमगलं केवलीपणत्तो धम्मोमगलं। चत्तारिलोगोत्तमा। अरहंतलोगोत्तमा। सिद्धलोगोत्तमा। साहूलोगोत्तमा। केवलिपणत्तो धम्मोलोगोत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि। अरहंतसरणं पवज्जामि। सिद्धसरणं पव्वज्जामि। साहूसरणं पव्वज्जामि। केवलिपणत्तो धम्मोसरण पव्वज्जामि।

अर्थः—केवलीका प्ररूपण किया हुआ धर्म मंगल है। चार लोकोत्तम हैं-अरिहंत लोकोत्तम, सिद्ध लोकोत्तम, साधु लोकोत्तम, केवलीका प्ररूपण किया हुआ धर्म लोकोत्तम, इन चारोंकी शरणमें मैं जाता हूं। अरिहंतकी शरणमें जाता हूं, सिद्धकी शरणमें जाता हूं, साधुकी शरणमें जाता हूं, केवलीके प्ररूपण किये हुए धर्मकी शरणमें जाता हूं।

अड्ढाईदीवदो समुद्देसु पणारस कम्मभूमीसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं धम्मायरियाणं धम्मदेसयाणं धम्मणायगाणं धम्मवरचावरंगचक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करोमि किरियम्मं करेमि भंते सामइयंसावज्जजोग पचक्खामि जावनियमंतिविहेण मणसा वचिया कायेण ण करेमि ण कारेमि अंणंपि करंतं ण समणुमणामि तस्स भंते अइचारं पडिकमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं जाव अरहंताणं भयवंताण णमोकारं पज्जुवासं करेमि तावकायं पावकम्म दुच्चरिय वोस्सरामि।

अर्थः—ढाइ द्वीप दो समुद्र संबंधी जो पंद्रह कर्मभूमिक्षेत्रमें रहनेवाले जितने अरिहंतोंको, भगवंतोंको, द्वादशांगी आदिके करनेवालोंको, तीर्थंकरोंको, जिनेश्वरोंको, जिनोत्तमको, केवलीको, सिद्धको, बुद्धको, मोक्ष पाये हुओंको, अंतगड केवलीको, पार पाये हुओंको, धर्माचार्यको, चतुर्विध संघको, द्वादशांगीरूप अमृतका पान करानेवालोंको, धर्मके नायकको

धर्म प्रधान-श्रेष्ठ है। चारों गतियोंका अंत करनेके लिये उत्तम चक्रवर्ति समानको, देवाधिदेवको, ज्ञानको, दर्शनको, चारित्रको हमेशा करता हूं, कराता हूं। हे भदंत! मैं सामायिक करता हूं। मैं जहां तक नियम हो वहांतक सब सावद्ययोगोंका पच्छखाण करता हूं। तीन प्रकार करके मन वचन और कायसे मैं न करता हूं, न कराता हूं और न दूसरा करता हो उसकी अनुमोदना करता हूं। हे भदंत! उस अतिचाचारका मैं प्रतिक्रम करता हूं, निन्दा करता हूं, गर्हा करता हूं। जहांतक अरिहंत भगवानके णमोकारका मुखसे स्पष्ट उच्चारण न करूं वहांतक कायोत्सर्ग करता हूं. वहांतक मेरी काया और पाप कर्म तथा दुष्ट कर्म वोसराता हूं अर्थात् त्याग करता हूं॥

जय अर्हं। णमो अरहंताण जाप्य ९ दीयते उच्छ्वास २७

अर्थः—णमोकार मंत्र ९ वार २७ उच्छ्वास पूर्वक पढें।

ॐ नमः परमात्मने नमोऽनेकांताय संताया थोस्सामिहं।

जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे
णरपवर लोयमहिए, विहुय रयमले महप्पणे॥१॥

---

१ जो यति हो वह 'जावजीवम' कहें।

अर्थः—ॐकारको नमस्कार हो। परमात्माको, अनेकांतको, एकांतको, संतोंको मैं नमस्कार करता हूं। जिनवरको, तीर्थवरको, केवलीको, अनंत जिनको तथा नरलोक तथा श्रेष्ठ लोगोंमें पूज्य और रजोमलसे सहित ऐसे महात्माको नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

लोयस्सुज्जोययरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउविसं चे व केवलिणो ॥२॥

अर्थः—लोकमें उद्योत करनेवाले, धर्मप्रधान जो तीर्थरूप ऐसे जिन भगवंतकी मैं वंदना करता हूं और कर्मरूप शत्रुओंको हननेवाले अरिहंत और केवलज्ञानी चौवीस तीर्थंकरोंका मैं स्तवन करूंगा ॥२॥

उसह मजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च।
सुमइं च पोमप्पहं, सुपास जिणं च चंदप्पहं
वंदे ॥३॥

अर्थः—ऋषभदेव, अजितस्वामी, संभवनाथ, अभिनंदन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ, और चंद्रप्रभुकी मैं वंदना करता हूं ॥३॥

सुविहिं च पुष्फयंतं, सीयल सेयंस वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥४॥

अर्थ:—सुविधिनाथ, पुष्पदंत, सीतलनाथ श्रेयांस, वासुपूज्य, विमलनाथ अनंतनाथ, धर्मनाथ भगवानकी मैं वंदना करता हू ।।४।।

कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च मुणीसुव्वयं च।
णमिं वंदे अरिट्ठणेमिं तहपासं वड्ढमाणं च ।।५।।

अर्थ:—कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और वर्द्धमानस्वामीको मैं नमस्कार करता हू ।।५।।

एवमए अभित्थुया, विहुयरमला, पहीणजरमरणा।
चउविसंपि जिणवरा तित्थगरा मे पसीयंतु ।।६।।

अर्थ:—ऐसे वे भिक्षुक, रजोमल रहित और जरा मरणसे रहित ऐसे चौवीस तीर्थंकर मुझे प्रसन्न हों ।।६।।

कित्तियवंदियमहिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोगणाणलाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं ।।७।।

अर्थ:—जिनकी महिमा कीर्तिरूपसे गाई गई है ऐसे लोकमें उत्तम सिद्ध भगवंत मुझे आरोग्य और ज्ञानका लाभ दें और समाधि तथा बोधिलाभ दें ।।७।।

चंदेहिं णिम्मलयरा, आइच्चा उहियं पयासता।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिशंतु ।।८।।

अर्थः—चंद्र जैसे निर्मळ, सबका हित करनेवाले और सागर जैसे गंभीर ऐसे सिद्ध पुरुष मुझे सिद्धि दें ॥८॥

यावन्ति जिनचैत्यानि विद्यन्ते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहं ॥१॥

अर्थः—इस तीन भुवनमें जितने जिन चैत्यालय हैं उतने जिन चैत्योंको हमेशा तीन प्रदक्षिणा करके भक्तिसे मैं नमस्कार करता हूं ॥१॥

[प्रतिक्रमण करनेवालोंको यहां तक पढ़कर प्रतिक्रमण पढ़ना चाहिये और प्रतिक्रमण न करना हो तो आगेका सामायिक पाठ चालू रखना चाहिये];

हरिणीवृत्तम्।

जयति भगवान् हेमांभोजप्रचारविजृंभिता
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्ण प्रभापरिचुंबितौ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः ॥२॥

अर्थः—सुवर्णके कमलपर प्रचार करनेवाले और नत-मस्तक ऐसे, देवताके मुकुटकी कीर्तिको चुंबन करनेवाले ऐसे, जिनके दो चरणोंको प्राप्त करके जो पुरुष, मलीन हृदयवाले मानसे भ्रमित और परस्पर वैरवाले हैं वे भी पाप-रहित होकर परस्पर विश्वासी होते हैं ऐसे वे भगवान् जयको पाते हैं। २॥

तदनु जयति श्रेयान् धर्म्मः प्रवृद्धमहोदयः
कुगति विपथ क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणतनयस्यांगीभावाद्विविक्तविकल्पितं
भवतु भवतस्तात्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतं ॥३॥

अर्थः—बुरी गतिरूप विपरीत मार्गके क्लेशसे जो प्रजाको छुडाते हैं ऐसे महोदयको बढानेवाला श्रेष्ठ धर्म जय पाता है। परिणत नयके अंगीभावसे विवेचन किये हुए श्रीजिनेंद्र भगवंतके तीन प्रकारके वचनामृत आपकी रक्षा करनेवाले हों ॥३॥

तदनु जयताज्जनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी
प्रभवविगमध्रौव्यद्रव्यस्वभावविभाविनी।
निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम् ॥४॥

अर्थः—उसके बाद अनेक प्रकारकी सरितारूप और उत्पत्ति विनाश और ध्रौव्य ये तीन प्रकारके द्रव्य स्वभावको बतानेवाली जैनकी वह ज्ञानसंपत्ति जयको प्राप्त हो। जो ज्ञान संपत्ति निरुपम सुख अर्थात मोक्षसुखका खुला हुआ द्वार है वह रजोगुण रहित, अविनाशी और अव्यय ऐसे मोक्षको दें ॥४॥

आर्यावृत्तम्।

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्वजगद्वंद्येभ्यो, नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः ॥१॥

अर्थः—सब जगतको वंदन करने योग्य ऐसे अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुको हमेशा नमस्कार हो ॥१॥

मोहादिसर्वदोषारिघातकेभ्यः सदाहतरजोभ्यः
विरहितरहस्कृतेभ्यः, पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः।२।

अर्थः—मोहादिक सब दोष रूपी शत्रुओंको नाश करनेवाले, रजोगुणको हननेवाले और दुष्कृत्य रहित ऐसे पूजनेयोग्य अर्हंत भगवंतको मैं नमस्कार करता हूं ॥२॥

क्षांत्यार्ज्जवादिगुणसुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं वंदे धर्म्मं जिनेंद्रोक्तम् ॥३॥

अर्थः—क्षांति, सरलता आदि गुणोंके समूहको संपादन करनेमें साधनरूप, सब लोकके हितके कारण और शुभ प्रकाशको बढ़ानेवाले ऐसे जिनेंद्रभाषित धर्मकी मैं वन्दना करता हूं ॥३॥

मिथ्याज्ञानतमोवृत, लौकिकज्योतिरमितगमयोगि
सांगोपांगमजेयं, जैनं वचनं सदा वन्दे ॥४॥

अर्थः—मिथ्या ज्ञानरूपी अंधकारसे व्याप्त ऐसे लोकमें ज्योतिरूप, मानसे रहित, किसीके योगसे रहित, अंग उपांग सहित और जीती जा न सके ऐसी जिनवाणीकी मैं सदा वंदना करता हूं ॥४॥

भवनविमानज्योतिर्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि ।
त्रिजगदभिवदितानां, त्रिधा वन्दे जिनेंद्राणाम् ।५।

अर्थः—भवन, विमान, ज्योति, व्यंतर और नर इन सर्वलोकमें रहे हुए ऐसे तीन जगत द्वारा वंदनीय जिनेंद्रोंके सब चैत्योंकी मैं मन वचन और कायासे वंदना करता हूं ।५॥

भुवनत्रयेऽपि भुवनत्रयाधिपाभ्यर्च्य तीर्थकर्तृणाम् ।
वंदे भवाग्निशान्त्यै विभवानामालयालीस्ताः ।६।

अर्थः—संसार रहित तीन भुवनके स्वामियोंको पूजन करने योग्य ऐसे तीर्थंकरोंकी, तीन भुवनमें स्थित चैत्योंकी, श्रेणियोंकी, संसाररूप अग्निकी शांतिके लिये मैं वंदना करता हूं । ६।

इति पञ्च महापुरुषाः प्रणुता जिनधर्मवचनचैत्यानि ।
चैत्यालयाश्च विमलां, दिशंतु बोधिं बुधजनेष्टाम् ।७।

अर्थः—इस प्रकार स्तुति किये गये पंचपरमेष्ठी पुरुष, जिनधर्म, जिन वचन (वाणी), जिन प्रतिबिंब और जिनचैत्य (मंदिर) ये सब, विद्वान पुरुषोंसे इच्छित निर्मल बोधको दें ॥७॥

औपच्छंदसिक वृत्तम ।

अकृतानिकृतानिचाप्रमेयद्युतिमत्सुमदिरेषु
मनुजामरपूजितानि वंदे प्रतिबिंबानि जगत्त्रये
जिनानाम् ॥१॥

अर्थः—कांतिवाले चैत्यमें रहे हुए अप्रमेय कांतिसे सुशोभित, और मनुष्य तथा देवताओंसे पूजित ऐसे तीन जगतके शाश्वत और स्थापित जिन भगवंतके प्रतिबिंबोंको मैं वंदना करता हूं। १।

द्युतिमंडभासुरांगयष्टीभवनेषु त्रिषु भूतये प्रवृत्ताः। वपुषा प्रतिमा जिनोत्तमानां प्रतिमाः प्रांजलिरस्मि वंदमानः ॥२॥

अर्थः—कांतिके मंडलसे जिसके अंगकी यष्टि प्रकाशमान है, तीन भुवनमें जो मोक्ष-संपत्तिके लिये प्रवर्तमान है और शरीरसे जिसको कोई उपमा दी नहीं जासकती ऐसी जिन प्रतिमाओंकी मैं दो हाथ जोड़कर वंदना करता हूं॥२॥

विगतायुधविक्रियाविभूषाः प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्। प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्या प्रतिमाः कल्मषशांतयेऽभिवंदे ॥३॥

अर्थः—जिन्होंने शस्त्रादि विक्रियाका त्याग किया है, जिनके पास वस्त्राभूषण नहीं रहते जिससे अपने सच्चे प्रकृति स्वरूपमें रही हुई और चैत्योंमें कांतिसे अनुपमपनेको विराजित ऐसी कृतार्थ भगवत् प्रतिमाओंकी पापकी शांतिके लिये मैं वंदना करता हूं ॥३॥

कथयन्ति कषायमुक्तिलक्ष्मीं परया शांततया भवांतकानाम्।
प्रणमामि विशुद्धये जिनानां प्रतिरूपाण्यभिरूपमूर्त्तिमति ॥४॥

अर्थ—जो संसारको नाश करनेवाले मुनिगण और प्राणियोंको अपनी उत्कृष्ट शांतिसे कषायोंकी मुक्तिरूप लक्ष्मीको कहते हैं ऐसे अभिरूप मूर्तिवाले भगवंतके प्रतिबिम्बोंको शुद्धिके लिये मैं प्रणाम करता हूं ॥४॥

यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं सुकृतं दुःकृतवर्त्मनिरोधितेन,।
पटुना जिनधर्म्म एव भक्तिर्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे ॥५॥

अर्थः—दुष्कृत्यके मार्गको रोकनेमें चतुर ऐसे सिद्ध पुरुषोंकी भक्तिसे जो सुकृत संपादन किया हो तो उससे भवभवमें मेरी भक्ति जिन धर्ममें ही स्थिर हो जाओ ॥५॥

अनुष्टुप।

अर्हतां सर्वभावानां दर्शनज्ञानसंपदाम्।
कीर्त्तयिष्यामि चैत्यानि यथाबुद्धिविशुद्धये ॥१॥

अर्थः—सब भावोंको जाननेवाले, दर्शन व ज्ञानकी संपत्तिवाले ऐसे अरहंत भगवानके चैत्योंका बुद्धिकी शुद्धिके लिये मैं कीर्तन करूंगा ॥१॥

श्रीमद्भावनवासस्थाः स्वयं भासुरमूर्त्तयः।
वंदिता नो विधेयासुः प्रतिमाः परमां गतिम् ॥२॥

अर्थः—शोभायमान ऐसी भावनारूप मंदिरमें रही हुई, स्वाभाविक प्रकाशमान मूर्तियुक्त प्रभुकी प्रतिमाकी वंदना करनेसे हमें परमगति हो ॥२॥

यावंति संति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि वंदे भूयांसि भूतये ॥३॥

अर्थः—इस लोकमें जितने शाश्वत और स्थापित चैत्य हैं. उन सब चैत्योंकी, संपत्तिके लिये मैं वन्दना करता हूं ॥३॥

ये व्यंतरविमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ये च संख्यामतिक्रांताः संतु नो दोषशांतये ॥४॥

अर्थः— व्यंतरोंके विमानोंके भीतर जो शाश्वत प्रतिमा-

ओंके असंख्य चैत्य हैं वे चैत्य हमारे दोषोंकी शांतिके लिये हो ॥४॥

ज्योतिषामथ लोकस्य भूतयेऽद्भुतसपदः।
गृहाः स्वयभुवः संति विमानेषु नमामि तान् ॥५॥

अर्थः—ज्योतिषी देवताके लोकमें, विमानोंमें समृद्धि-के लिये जो अद्भुत संपत्तिवाले शाश्वत चैत्य हैं उनको मैं नमस्कार करता हूं ॥५॥

वंदे सुरकिरीटाग्रमणिच्छायाभिषेचनम्।
याः क्रमैरेव सेवन्ते तदर्चाः सिद्धिलब्धये ॥६॥

अर्थः—जिन भगवंतकी प्रतिमाएं देवताके मुकुटके अग्र भागके मणियोंकी कांतिके अभिषेकको अपने चरणोंसे सेवन करते रहते हैं, उन प्रतिमाओंकी, सिद्धिकी प्राप्तिके लिये मैं वन्दना करता हूं ॥६॥

इति स्तुतिपथातीतश्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वाश्रवनिरोधिनी ॥७॥

अर्थः—स्तुतिके विषयको उल्लंघन करनेवाली लक्ष्मीको धारण करनेवाले ऐसे श्री अर्हंत भगवानके चैत्योंका इस-प्रकार किया हुआ कीर्तन मेरे सब आश्रवोंका निरोध करनेवाला हो ॥७॥

आर्याभेदवृत्तम्।

अर्हन्महानदस्यत्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित-
प्रक्षालनैककारणमितिलौकिकुहकतीर्थमुत्तमतीर्थं ॥

अर्थः—अर्हंत भगवंतरूप बडे धौका एक तीर्थ है वह तीर्थ तीन भुवनके भव्यजनरूपी यात्रियोंके पापको धोनेमें एक कारणरूप होनेसे लौकिक तीर्थ कृत्रिम है और वह तीर्थ उत्तम है ॥१॥

लोकालोकसुतत्त्वप्रत्ययबोधनसमर्थदिव्यज्ञानप्रत्यह-
वहत्प्रवाहं व्रतशीलामलविशालकूलद्वितयं ॥२॥

अर्थः—इस तीर्थमें लोकालोक और शुभ तत्वकी प्रतीति करनेवाले ऐसे और बोध करनेको समर्थ ऐसा दिव्य ज्ञान-रूपी प्रवाह हमेशा वहन करता रहता है। इस तीर्थके व्रत और शीलरूपी दो विशाल और निर्मल ऐसे दो तट हैं। २।

शुक्लध्यानस्तिमितस्थितराजद्राजहंसराजितमशकृत्
स्वाध्यायमंद्रघोषं नानागुणसमितिगुप्तिसिकता-
सुभगम् ॥३॥

अर्थः—इस अर्हंतरूपी तीर्थमें शुक्ल ध्यानमें निश्चय होकर रहे हुए मुनिरूपी राजहंस विराज रहे हैं, उसमें स्वाध्यायरूपी मंदघोष हुआ करता है और अनेक प्रकारके

गुण, पांच प्रकारकी समिति तथा तीन प्रकारकी गुप्तिरूपी कृषिसे यह तीर्थ बहुत सुंदर मालूम होता है ॥३॥

क्षान्त्यावर्त्तसहस्रं, सर्वदयाविकचकुसुमविलसल्लति-
कम्।
दुःसहपरीषहाख्यद्रुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम्॥४॥

अर्थः—इस तीर्थमें क्षमारूप हजारों आवर्त हैं। सब जीवोंपर दयारूपी विकसित पुष्पयुक्त लताएं हैं, और दुःसह परिषहरूपी चपल तरंगोंकी उसमें रचना होती है ॥४॥

व्यपगतकषायफेनं रागद्वेषादिदोषशैवलरहितम्।
अत्यस्तमोहकर्दममतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरम्
॥५॥

अर्थः—इस तीर्थमें कषायरूपी फैन नहीं है, रागद्वेषादिरूप सेवाल नहीं हैं, मोहरूपी कर्दम विनाश होगया है और मृत्युरूप मगरका समूह अतीव दूरसे ही अस्त होगया है ५॥

ऋषिवृषभस्तुतिमद्रोद्रेकितनिर्घोषविविधविह-
गध्वानं।
विविधतपोनिधिपुलिन साश्रवसवरनिर्जरा
निस्रवणम्॥६॥

अर्थः—इस तीर्थमें मुनिगणद्वारा की हुई श्री ऋषभ भगवंतकी स्तुति उसके शब्दके घोषरूपी पक्षियोंकी ध्वनि होती रहती है। विविध प्रकारके झरने उसमें निकलते रहते हैं ॥६॥

गणधरचक्रधरेंद्रप्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैः पुरुषैः।
बहुभिः स्नातं भक्त्या कलिकलुषमलापकर्षणार्थ-
ममेयं ॥७॥

अर्थः—गणधर चक्रवर्त्ति और इंद्र आदि महा भव्य पुंडरिक पुरुषोंने कलियुगके पापरूप मलको दूर करनेके लिये इस अमेय तीर्थमें भक्तिसे स्नान किया है ॥७॥

अवतीर्णवतःस्नातु ममापि दुस्तरसमस्तदुरितदूरम्।
व्यपहरतु परमपावनमनन्यजय्यस्वभावगभीरं ॥८॥

अर्थः—परम पवित्र करनेवाला, दूसरेसे जीता न जा सके ऐसे स्वभाव और भावसे गंभीर ऐसा यह तीर्थ है। उसमें स्नान करनेके लिये प्रवेशनेवाले ऐसे मेरे समस्त दुस्तर पाप दूर हों ॥८॥

पृथिवीवृत्तम।

अताम्रनयनोत्पलं सकलकोपवन्हेर्जयात्
कटाक्षशरमोक्षहीनमविकारतोद्रेकतः

विषादमदहानितः प्रहसितायमानं सदा
मुख कथयतीव ते हृदयशुद्धिमात्यंतिकीम् ॥१॥

अर्थः—हे प्रभु! सभी कोपरूप अग्निका जय करनेसे अरक्त ऐसे नेत्र कमलवाले, अविकारके अधिकपनसे कटाक्ष-रूपी बाणके मोक्षसे रहित ऐसा और खेद तथा मदकी हानिसे हमेशा हास्य करनेवाला ऐसा आपका मुख हृदयकी अत्यंत शुद्धिको कह देते हैं ।१॥

निराभरणभासुरं विगतरागवेगोदया-
न्निरंबरमनोहरं प्रकृतिरूपनिर्दोषनः।
निरायुधसुनिर्भयं विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात् ॥२॥

अर्थः—हे भगवन्! आपका रूप जो रागके वेगका उदय नाश पानेसे आभूषण रहित है तौभी प्रकाशमान है, प्राकृतिक रूपकी निर्दोषतासे दिगंबर होते हुए जो मनोहर है, हिंस्य करनेयोग्य और हिंसा ये दो क्रम न होनेसे शस्त्र-रहित होते हुए जो निर्भय है और विविध प्रकारकी वेदनाका क्षय होनेसे भोगरहित होते हुए भी जो तृप्तिको प्राप्त है ॥२॥

मितस्थितनखांगजं गतरजोमलस्पर्शनम्
नवांबुरुह चंदनप्रतिमदिव्यगंधोदयम्।

रवींदुकुलिशादिपुण्यबहुलक्षणालंकृतम्
दिवाकरसहस्रभासुरमप क्षणानां प्रियम् ॥३॥

अर्थः—हे भगवन्! आपका रूप ऐसा है कि जिसमें नाखून और केश प्रमाणसे रहे हुए हैं, जिसको रजोमलका स्पर्श भी नहीं होता जिसमें नवीन कमल तथा चंदन जैसी दिव्य गंधका उदय होता है, जो सूर्य चंद्र तथा वज्र आदि बहुत पवित्र लक्षणोंसे अलंकृत है, जो हजारों सूर्य जैसा प्रकाशमान है और जो नेत्रोंको अति प्रिय लगता है ॥३।

हितार्थपरिपंथिभिः प्रबलरागमोहादिभिः
कलंकितमना जनो यदाभिवीक्ष्य शोशुद्ध्यते॥
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः
शरद्विमलचंद्रमंडलमिवोत्थितं दृश्यते ॥४॥

अर्थः—हित अर्थके शत्रुरूप ऐसे राग मोहादिकसे जिसका मन कलंकित हुआ है ऐसा मनुष्य जिस रूपको देखनेसे अतीव शुद्ध हो जाता है और इस जगतमें जिस रूपको देखनेवाले मनुष्योंको वह रूप शरदऋतुके निर्मल चंद्रमंडलकी तरह सदा सन्मुख उदयको प्राप्त हुआ दिखाई देता है ॥४॥

तदेतदमरेश्वरप्रचलमौलिमालामणि—
स्फुरत्किरणचुंबनीयचरणारविंदद्वयम्।

पुनातु भगवन् जिनेन्द्र तव रूपमंधीकृतं
जगत्सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः ॥५॥

अर्थः—हे जिनेंद्र भगवन्! इन्द्रोंके चकायमान मुकुटकी पंक्तियोंकी मणियोंकी किरणोंसे जिसके चरणकमलका युगल चुंबन करने योग्य है ऐसा आपका रूप, अन्य तीर्थ और अन्य गुरुके संगरूप दोषके उदयसे अंध हुए इस सर्व जगतको पवित्र करें ॥५॥

स्रग्धरावृत्तम।

मानस्तंभाः सरांसि
प्रविमलजलसत्खातिकापुष्पवाटी
प्राकारो नाट्यशाला-
द्वितयमुपवनं वेदिकांतर्ध्वजाद्याः।
शालः कल्पद्रुमाणां
सुपरिवृतिवनंस्तूपहर्म्यावली च
प्राकारः स्फाटिकोंत-
र्नृसुरमुनिसभा पीठिकाग्रे स्वयंभूः ॥६॥

अर्थः—मानस्तंभ, सरोवर, निर्मल जल, खाई, फूलोंका बगीचा, किला, दो नाट्यशाला, उपवन, वेदिका, भीतर ध्वजाएं, शाल, अच्छी बाडवाले कल्पवृक्षोंका वन, स्तूप,

मकानोंकी पंक्तियां, स्फटिक मणिका किला, उसके भीतर मनुष्य, देव और मुनियोंकी सभा और उसके बाद पीठिका, उसके अग्र भागमें स्वयंभु भगवान विराजमान हैं ॥६॥

नताखंडलमौलीनां यत्पादनखमंडलम्
खंडेंदुशेखरीभूतं नमस्तस्मै स्वयंभुवे ॥७॥

अर्थ—जिसके चरणनखोंके मंडलको नम्रीभूत ऐसे इन्द्रके मुकुटोंको अर्ध-चंद्रशेखर (अर्द्धचंद्र है जिसके शेखर-मुकुटमें है ऐसे शंकर) रूप हुआ है वे स्वयंभू भगवंतको नमस्कार है ॥७॥

इन्द्रवज्रावृत्तम्।

चंद्रप्रभं चंद्रमरीचिगौरं चंद्रद्वितीयं जगतीवकांतम्।
वंदेऽभिवंद्यं महतामृषींद्रं जिनं जितस्वांतकषाय-
वन्द्यम् ॥१॥

अर्थ—चंद्रके किरण जैसे गौर, जिससे जगतमें दूसरा चंद्र ही न हो ऐसा मनोहर, बडे पुरुषोंको वंदन करने योग्य और हृदय तथा कषायके बंधको जीतनेवाले ऋषियोंके इन्द्र-श्री चंद्रप्रभुको मैं वन्दना करता हूं ॥१॥

यस्यांगलक्ष्मीपरिवेषभिन्नं
तमस्तमोऽरेरिव रश्मिभिन्नं।

ननाश बाह्यं बहु मानसं च
ध्यानप्रदीपातिशयेन भिन्नं ॥२॥

अर्थः—सूर्यके किरणोंसे भेद पाया हुआ बाहरका अंधकार जैसे नाशको प्राप्त होता है उसी प्रकार जिसके अंगके परिवेष (भामंडल) से भेदको प्राप्त बाहरका अंधकार और ध्यान रूपी दीपकके प्रकाशसे भेदको प्राप्त भीतरका बहुत अंधकार नाश हो जाता है ॥२॥

स्वपक्षसौस्थित्यमदावलिप्ता
वाक् सिंहनादैर्विमदा बभूवुः।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगंडा
गजा यथा केसरिणो निनादैः ॥३॥

अर्थः—मदसे जिसके गंडस्थल आर्द्र हैं ऐसे हस्ति (हाथी) जैसे केशरीसिंहके नादसे मद रहित हो जांय तैसे अपने पक्षकी स्थितिके मदसे गर्व करनेवाले ऐसे वादी पुरुष जिन भगवंतकी वाणीरूप सिंह-नादसे मद रहित हुए हैं ॥३॥

यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः
पदं बभुवाद्भुतकर्मतेजाः।
अनंतधामाक्षरविश्वचक्षुः समंतदुःखक्षयशासनश्च
॥४॥

अर्थः—अद्‌भुत कर्मरूप तेजको धरनेवाले, अनंतधाम, अक्षर (अविनाशी) विश्वके चक्षुरूप और जिनका शासन अनंत दुःखोंका क्षय करनेवाला है ऐसे जो प्रभु सबलोकमें परमेष्ठीपदके स्थानरूप हुए हैं ॥४॥

स चंद्रमाभव्यकुमुद्वतीनां विपन्नदोषाभ्रकलंकलेपः। व्याकोशवाग्न्यायमयूखजालः पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे ॥५॥

अर्थः—विनाश पाये हुए दोषरूप आकाश-कलंकके लेपसे रहित और जिसकी न्याय वाणी सब विकासित किरणोंकी जाल है ऐसे भव्यजन रूपी कमलके पुष्पको विकसित करनेवाले चंद्ररूपी पवित्र भगवान मेरे मनको पवित्र करें ॥५॥

जयमाल गाथा।

वत्ताणुट्ठाणे, जणधणुदाणे, पइ, पोसिउ, तुहु, खत्तधरु। तव चरणविहाणे, केवलणाणे, तुहु, परमप्पउ, परमपरु ॥छ.॥

अर्थः—हे भगवन्! आपने सांसारिक जीवोंको, व्रतानुष्ठानको तथा रत्नत्रयको देकर पुष्ट किया इसी लिये आप वास्तवमें क्षत्रिय हैं क्योंकि क्षत-दुःखित जीवका रक्षक ही क्षत्री कहलाता है और तपश्चरण करनेपर आप केवलज्ञानधारी हुए इसलिये आप मुनि गणधरादिक उत्तम पुरूषोंमें भी उत्तम होगये ॥छ.॥

पद्धरी छंद।

जय रीसह, रिसीसरणमियपाय, जय अजिय जियंगयरोसराय।। जय संभव संभवकयविओय।। जय अहिणंदण णंदियपओय ।।१।। जय सुमइ सुमइसुम्मय पयास। जय पउमप्पह पउमाणिवास। जय जय हि सुपास सुपासगत्त। जय चंद्प्पह चंदाहवत्त ।।२।। जय पुष्फदंत दंतंतरंग। जय सीयल सीयल वयणभंग। जय सेय सेयकिरणोह-सुज्ज। जय वासुपुज्ज पुज्जाणपुज्ज ।।३।। जय विमल विमलगुणसेढिटाण। जय जय हि अणंता णंत णाण। जय धम्म धम्म तित्थयर संत। जय संति संति विहियायवत्त ।।४।। जय कुंथु कुंथुपहु अंगि सदय। जय अर अरमाहरविहियसमय। जय मल्लि मल्लि आदामगंध। जय मुनिसुव्वय सुव्वयणिबंध ।।५।। जय णमि णमियामरणियरसामि। जय णेमि धम्म रहचक्कणेमि। जय पास पासछिंदण-किवाण। जय वड्ढमाण जसवड्ढमाण ।।६।।

अर्थः—ऋषीश्वरों द्वारा जिनके चरणकमल पूजित हैं ऐसे हे ऋषभनाथ! आप जयवंते हो। कामदेव तथा रागको जीतनेवाले हे अजितनाथ! आप जयशाली हों। जिन्होंने दुःखमयी सांसारिक दुःखोंको हटादिया है ऐसे हे संभवनाथ! आप जयवान हों। दर्शनोपयोग तथा ज्ञानोपयोगके बढ़ानेवाले हे अभिनंदननाथ! आपकी जय हो॥१॥ सत्य मतके प्रकाश करनेवाले केवलज्ञानधारी हे सुमतिनाथ! आप जयशील हो। केवलज्ञान केवलदर्शनादिक तथा कीर्ति, कांति आदि लक्ष्मीके निवासालय, हे पद्मप्रभु जिनेश! आप जयधारी हों। समचतुरस्रसंस्थान और वज्रवृषभनाराच संहननके कारण असाधारण सुंदरतायुक्त है पार्श्वभाग जिसमें ऐसे सुंदर शरीरवाले तथा संसारी जीवोंकी रक्षा करनेवाले हे सुपार्श्वनाथ भगवान्! आपकी सदा जय हो। चांदनीके समान जीवोंको सुख, शांति तथा आह्लादका देनेवाला तथा अज्ञानांधकारको भगानेवाला है मुख जिनका ऐसे हे चंद्रप्रभ जिनेश आप सर्वदा जयवंत हो॥२॥

जिन्होंने अंतरंगको दमन किया है ऐसे हे पुष्पदंत जिन! आप जयशील हों। संसारके असह्य संतापसे तडफडाते हुए जीवोंके लिये शीतल वचन-शैलीके धारक तथा सप्तभंगीके धारक हे शीतलनाथ भगवान्! आप सदा जयवंत हो। सूर्यके समान कल्याणस्वरूप किरणोंके धारण करनेवाले हे श्रेयांसनाथ स्वामिन्! आप सदा जयवान हो।

देव, मनुष्य तिर्यंचोंसे पूज्य, इंद्र, अहमिन्द्र, नरेंद्र, चक्रवर्ति, गणधर, मुनीश्वर तथा सिद्धादिकोंके द्वारा पूजनीय हे वासु-पूज्य जिनपते ! आप सर्वदा जयधारक हों ॥३॥

क्षुधादिक दोषोंसे रहित, निर्मल गुणोंको पानेके लिये श्रेणियोंके समान हे विमलनाथ भगवान ! आप सदा जयशाली हो। त्रिलोकवर्ती जीव पुद्गलादि छह द्रव्योंके अनंतानंत भेदोंको तथा उनकी अनंतानंत पर्यायोंको एक-साथ प्रत्यक्ष जाननेवाले अनंत ज्ञानधारी श्री अनंतनाथ जिनेश्वर ! आप वारंवार जयशाली हो। नरक, निगोद तथा तिर्यंचादि योनियोंमें दुःखसे व्याकुल संसार-सागरके दुःखोंके चक्रमें पडे हुए जीवोंका उद्धार करनेके लिये सम्यग्दर्शनादि-रूप धर्मतीर्थ (धर्मरूपी घाट) के करनेवाले श्री धर्मनाथ तीर्थंकर सदा जयवंत हो। ज्ञानावरणादि कर्मोंके प्रचड संतापको दूर करनेके लिये छत्रके धारक अथवा दुःखोंसे संतप्त जीवोंकी रक्षा करनेको सदुपदेशरूपी छायोंको प्रदान करनेवाले श्री शांतिनाथ महाराज हमारे हृदयमें जयशाली रहें ॥४॥

कुंथु आदिक समस्त संसारवर्ती जीवोंपर परमदयालु कुंथुनाथ जिनवर जयकारको प्राप्त हो। तृप्तिकारक अपार अलौकिक निराकुल सुखको प्रदान करनेवाली मुक्तिसुंदरीके वर श्रीअरनाथ तीर्थंकर ! आपकी सदा जय हो ! रोग शोक दुर्गंधादिके नष्ट करनेवाले तथा मालती पुष्पोंकी मालाके समान धार्मिक सुगंधिके फैलानेवाले श्रीमल्लिनाथ

भगवान! आपका सदा जयकार जयकार हो। ऋषीश्वरोंके पवित्र चारित्रको उत्पन्न करनेवाले हे मुनिसुव्रतनाथ तीर्थेश्वर! आप जयवंत हो ॥५॥

देव-समूहके स्वामी इंद्रोंद्वारा पूजित हे नेमिनाथ जिनवर! आप जयशाली रहो। धर्मरूपी रथको चलानेके लिये पहियोंके धुरा समान हे नेमिनाथ जिनेश्वर! आप जयशील हो। संसार, जालको काटनेके लिये खड्गके समान श्रीपार्श्वनाथ जिनराज! आप जयवंत हों। एवं तीन लोकमें निर्मल कीर्तिसे बढे हुए श्रीवर्द्धमान (महावीर) तीर्थेश्वर! आपकी सदा जय हो ॥६॥

घत्ता।

इय जाणिय णामहिं॥ दुरियविरामहिं। परहिं णमिय सुरावलिहिं॥ अणिहणहिं। अणाइहिं। समयकुवाइहिं। पणविवि अरहंतावलिहिं॥छ॥

अर्थः—इस प्रकार दुष्कर्मोंको नाश करनेवाले, देव-समूहद्वारा परिपूजित, अविनाशी, अनादि एवं कुवादियोंको शांत करनेवाले सर्वोत्तम, इन ऋषभ आदि अरहंतोंको मैं नमस्कार करता हूं॥

वर्षेषु वर्षांतरपर्व्वतेषु नंदीश्वरे यानि च मंदिरेषु। यावंति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वंदे जिन-पुंगवानाम्॥१॥

अर्थः—भरतादिक सर्व खंडोंमें, वर्षधर पर्वतोंमें, नंदीश्वरमें, मंदरगिरिमें और आलोकमें जितने श्रीतीर्थंकरोंके चैत्यस्थान हैं उन सबको मैं वन्दना करता हू ॥१॥

अवनितलगतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां
वनभवनगतानां दिव्यवैमानिकानाम्।
इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानाम्
जिनवरनिलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥२॥

अर्थः—पृथ्वीपर रहे हुए शाश्वत और स्थापित किये हुए, वन और भवनमें रहे हुए, दिव्य विमानोंमें रहे हुए, ऐसे श्रीजिनेश्वर भगवंतके चैत्योंका मैं भावसे स्मरण करता हूं ॥ २ ॥

जंबूधातकिपुष्करार्द्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवा-
श्चंद्रांभोजशिखंडिकंठकनकप्रावृड्घनाभा जिनाः।
सम्यग्ज्ञानचरित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्म्मेंधनाः।
भूतानागतवर्त्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः।३।

अर्थः—जंबूद्वीप, धातकी खंड, और पुष्करार्द्ध इन तीन पृथ्वीके क्षेत्रोंमें उत्पन्न हुए, चंद्र, कमल, मयूरकंठ, सुवर्ण और वर्षाऋतुके मेघ जैसे कांतिवाले, सम्यग्ज्ञान और चारित्रके लक्षणोंके धारी और अष्ट कर्मरूपी बंधनोंको जिन्होंने भस्म

कर दिये हैं ऐसे वे जिन भगवंतोंको भूत, भविष्य और वर्तमान कालमें मैं नमस्कार करता हूं ॥३॥

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शालमलौ जंबूवृक्षे
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचके कुण्डले मानुषांके।
इक्ष्वाकारेंऽजनाद्रौदधिमुखशिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके
ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भुवनमहितले यानि चैत्यानि
तानि ॥४॥

अर्थः—शोभायुक्त मेरू पर्वतपर, कुल पर्वतपर, रजतगिरिपर, शालमलीवृक्षपर, जंबूवृक्षपर, वक्षार पर्वतपर, चैत्यवृक्षपर, रतिकर पर्वतपर, रुचक पर्वतपर, कुंडलगिरिपर, मानुषोत्तरपर, इक्ष्वाकार पर्वतपर, अंजनगिरिपर, दधिमुख शिखरपर, व्यंतरलोकपर, स्वर्गलोकपर, ज्योतिष-लोकपर और भुवनतिलकपर जितने चैत्य हैं उन सबकी मैं वन्दना करता हूं ॥ ४ ॥

देवासुरेंद्रनरनागसमर्चितेभ्यः
पापप्रणाशकरभव्यमनोहरेभ्यः।
घंटाध्वजादिपरिवारविभूषितेभ्यो,
नित्यं नमो जगति सर्वजिनालयेभ्यः॥५॥

अर्थः—देवताके इंद्रोंद्वारा, असुरोंके इंद्रोंद्वारा, नर तथा

नागदेवताओं द्वारा पूजित, पापका नाश करनेवाले, भव्य, मनोहर और घंटा, ध्वज आदिके परिवारसे भूषित ऐसे जगतमें सब जिनालयोंको मैं नित्य नमस्कार करता हूं ॥५।

द्वौ कुंदेंदुतुषारहारधवलौ, द्वाविंद्रनीलप्रभौ,
द्वौ बंधूकसमप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगुप्रभौ।
शेषाः षोडशजन्ममृत्युरहिताः संतप्तहेमप्रभा,-
स्ते संज्ञानदिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छंतु
न: ॥६॥

अर्थः—दो तीर्थंकर (चंद्रप्रभु और सुविधिनाथ) कुंद-पुष्प, चंद्र, बरफ और मोतीके हार जैसे उज्वल हैं। दो तीर्थंकर (मल्लिनाथ और पार्श्वनाथ) इन्द्रनील मणि जैसे वर्णवाले हैं। दो तीर्थंकर (पद्मप्रभु और वासुपूज्य) बंधूकके पुष्प जैसे हैं। दो तीर्थंकर (मुनिसुव्रत तथा नेमिनाथ) प्रियंगू पुष्प जैसी कांतिवाले हैं। और शेष १६ तीर्थंकर तपे हुए सुवर्ण जैसी कांतिवाले हैं। ऐसे इन जन्म मरणसे रहित, ज्ञानके सूर्य जैसे और देवताओंसे स्तुत्य सभी तीर्थंकर हमें सिद्धि दें ॥६।

इच्छामिभंते चेइयभत्तिकाउसग्गो कउ। तस्सा-लोचेउं। अहलोय तिरियलोय उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि। जाणि चेइयाणि ताणि

सव्वाणि तीसुविलोएसु भवणवासिय वाणविं-
तर जोइसिय य कप्पवासियत्ति चउव्विहादेवा सप-
रिवारा दिव्वेण गंधेण। दिव्वेण पुप्फेण। दिव्वेण
धूवेण। दिव्वेण चुण्णेण। दिव्वेहिं वासेहिं। दि-
व्वेहिं ण्हाणेहिं णिच्चकालं अच्चंति। पूजंति वंदंति
णमंसंति। अहमवि इह संतो तत्थसंताइं णिच्चकालं
अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि। दुक्खक्खउ
कम्मक्खउ। बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं
जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

अर्थः—हे भदंत! मैं चैत्यभक्ति और कायोत्सर्ग करनेकी इच्छा करता हूं तथा आलोचना करनेका इच्छुक हूं। जो अधोलोक, तिर्यक् लोक, तथा ऊर्द्ध लोकमें शाश्वत और स्थापित ऐसे जो २ जिन चैत्य हैं उनको, सब तीन लोकमें भवनवासी, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और कल्पवासी ये चार प्रकारके देवतागण परिवार सहित दिव्य गन्धसे, दिव्य पुष्पसे, दिव्य धूपसे, दिव्य चूर्णसे, दिव्य वाससे, और दिव्य द्रव्यसे तीन काल अर्चा करते हैं, पूजन करते हैं और नमस्कार करते हैं तथा जो जिन प्रतिमाऐं उनमें स्थित हैं उनकी मैं तीनकाल अर्चा करता हूं, वन्दना करता हूं और नमस्कार करता हूं। इस प्रकार करनेसे हमको दुःखका

क्षय, कर्मका क्षय, बोधिलाभ, अच्छी गतिमें गमन, समाधिसे मृत्यु (समाधिमरण) और जिनगुणकी प्राप्ति हो ॥

अथ पूर्वाह्निकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं पंच-गुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं ॥

अर्थः—अब दिनके प्रथम भागमें देववंदना करनेके लिये पूर्वाचार्योंके अनुक्रमसे सर्व कर्मोंके क्षयार्थ भाव-पूजा और वंदना करनेके स्तवन सहित पंच गुरु भक्तिरूप कायोत्सर्ग मैं करता हूं ॥

णमो अरिहंताणम्, आदि मंत्र ९ वार पढे ।

फिर चत्तारि मंगलम् (पृ. १६ में) से (पृ. २१ मेंसे) त्रिःपरीत्य नमाम्यहम् तक पढ जावें ।

प्रातिहार्यैर्जिनान् सिद्धान् गुणैः सूरीन् सुमातृभिः ।
पाठकान् विनयैः साधून् योगांगैश्चाष्टभिस्तुवे ॥१॥

अर्थः—अष्ट प्रकारके प्रातिहार्यसे जिन भगवंतका, अष्ट गुणोंसे सिद्ध पुरुषोंका तथा अष्ट प्रवचन-माताओंसे आचार्योंका तथा आष्टांग विनयसे उपाध्यायका तथा आठ प्रकारके योगके अंगोंसे साधुओंका मैं स्तवन करता हूं ॥१॥

मणुयणा इंदसुरधरियत्थत्तया पंचकल्लाण-

सुखावलीपत्तया। दंसणं णाणं अणंतं बल ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ॥१॥

अर्थः—वे जिन—अरहंत हमको वर अर्थात् श्रेष्ठ मंगल हैं, वे कैसे हैं—मनुष्य, नागेंद्र सुर इन तीन लोकके प्राणियोंने जिनको तीन छत्र धरे हैं; गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण ये पांच कल्याणको और उन संबंधी जो सुखकी आवली उसको प्राप्त हुए हैं। तथा दर्शन ज्ञान, ध्यान (सुख) और वीर्य ये अनंत चतुष्टय जिनको प्राप्त हैं ऐसे हैं॥१॥

जेहिं झाणग्गि बाणेहिं अइदड्ढयं। जम्मजर मरणणयरत्तयं दड्ढयं। जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं। ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणय ॥२॥

अर्थः—वे सिद्ध परमेष्ठी मुझे वर (श्रेष्ठ) ज्ञान दें। वे कैसे हैं—जिन्होंने ध्यानरूपी अग्नि-बाणसे जन्म जरा मरण-रूपी तीन नगर दग्ध किये हैं, व शाश्वत स्थान जो मोक्ष उसको पाया है ऐसे हैं ॥२॥

पंचहाचारपंचग्गिसंसाहया बारसंगाइ सुय-जलहि अवगाहया। मोक्खलच्छीमहंती महंते सया। सुरिणो दिंतु मोक्खं गया संगया ॥३॥

अर्थः—ऐसे आचार्य परमेष्ठी मुझे बडी मोक्ष—लक्ष्मी

दें। वे कैसे हैं-दर्शन ज्ञान चारित्र तप और वीर्य इन पंचाचार रूपी अग्निके साधक हैं. बारह अंगरूपी श्रुतके समुद्र जलको अवगाहनेवाले हैं। मोक्षकी एकदेश कर्मनिर्जराको सदा प्राप्त हुए हैं ऐसे हैं ॥३॥

घोरससारभीमाडवीकाणणे तिक्खवियराल-णहपावपंचाणणे। णठमग्गाण जीवाण पहदेसया वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया ॥४॥

अर्थः—सामायिकके कर्ता श्रीउपाध्याय परमेष्ठीको हम सदा वंदना करते हैं। वे कैसे हैं-विकराल सिंहोंसे युक्त संसाररूपी भयानक वनमें भ्रमण करानेवाला जो उद्यान उसमें भूले हुओंको मार्ग बतानेवाले हैं ॥४॥

उग्गतवचरणकिरणेहिं खीणंगया। धम्मवर-झाणसुक्केक्कझाणं गया। णिब्भरं तवसिरीय समा-लिंगया। साहवो ते महं मोक्खपहमग्गया ॥५॥

अर्थः—ऐसे साधु परमेष्ठी हैं वे मुझे मोक्ष-मार्गके दिखानेवाले हों वे कैसे हैं उग्र तपश्चरणद्वारा जिनका अंग क्षीण हो गया है और धर्मश्रेष्ठ ध्यान तथा शुक्ल ध्यानको प्राप्त हुए हैं तथा तप रूपी लक्ष्मीसे युक्त हैं ऐसे हैं ॥५॥

एण थोत्तेण जो पंचगुरुवंदए। गुरुयसंसार-

घणवल्लि सो छिंदए। लहइ सो सिद्धिसोक्खाइ बहुमाणण। कुणइ कम्मेंधण पुंजपज्जालणं॥६॥

अर्थः—जो पुरुष इस स्तोत्रसे पंच परमेष्ठी गुरुकी वंदना करते हैं वे संसाररूप सघन वेलको छेदते हैं और मोक्ष सुखको पाते हैं और अन्य पद पाकर मोक्षके प्रतिपक्षी कर्मरूपी बंधनके पुंजको जला देते हैं॥६॥

अरुहा सिद्धायरिया उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी। एदे पंच णमोकारा भवे भवे मम सुहं दिंतु॥

अर्थः—अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पंच परमेष्ठी हैं उनको नमस्कार हो, वे भवभवमें मुझे सुख देवें॥

इच्छामि भंते पंचगुरुभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताण अरहंताणं। अट्ठगुणसंपण्णाण उड्ढलोयमत्थयम्मि पयइट्ठियाणं सिद्धाण अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आइरियाणं। आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं। णिकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि। दुक्खक्खउ

कम्मक्खउ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं।
जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

अर्थः—हे भदंत! पंच गुरु भक्ति कायोत्सर्ग करनेकी आलोचना करनेकी मैं इच्छा करता हूं। अष्ट महा प्रातिहार्योंसे युक्त ऐसे अरिहंत भगवंतको, अष्ट गुणोंसे संपूर्ण ऐसे और ऊर्द्ध्व लोकमें स्थानवाले सिद्धोंको, अष्ट प्रवचन मार्गसे युक्त ऐसे आचार्योंको, आचारादिकके शुद्ध ज्ञानको उपदेशनेवाले ऐसे उपाध्यायजीको और ज्ञान दर्शन तथा चारित्र-रूप तीन रत्नके गुणोंको पालनेमें तत्पर ऐसे सर्वसाधुओंको अर्चता हूं, पूजता हूं, वन्दन करता हूं और नमस्कार करता हूं, इस कारणसे मुझे दुःखका क्षय, कर्मका क्षय, बोधिलाभ, अच्छी गतिमें गमन, समाधिसे मृत्यु (समाधिमरण) और जिन गुणोंकी प्राप्ति हो॥

अथ पौर्वाह्निकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं शांति-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं ॥

अर्थः—अब दिनके प्रथम भागमें देववंदनामें पूर्वाचार्योंके क्रमसे सब कर्मोंके क्षयार्थ भाव पुजा वंदना सहित शांति भक्ति कायोत्सर्ग करता हूं॥

णमोकार मंत्र नौ वार पढ़े। फिर चत्तारि मंगलम्

(पृ. १६)से लेकर पृ. २१ में "त्रिःपरीत्य नमाम्यहम्" तक फिर पढ़ जावे ॥

शान्तिपाठ।

शांतिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं, शीलगुणव्रतसंयमपात्रम्। अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं, नौमि जिनोत्तममंबुजनेत्रम् ॥१॥

अर्थः—चंद्र जैसे निर्मल मुखवाले, शीलगुण, व्रत और संयमके पात्ररूप गात्रमें १०८ लक्षणोंसे युक्त और कमल जैसे नेत्रवाले सर्व जिनोत्तम श्री शांतिनाथ भगवंतको मैं नमस्कार करता हूं ॥१॥

पंचममीप्सितचक्रधराणां पूजितमिंद्रनरेन्द्रगणैश्च। शांतिकरं गणशांतिमभीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि ॥२॥

अर्थः—इच्छित मनोरथको देनेवाले, चक्रवर्तियोंमें पांचवें, इंद्रनरेंद्रोंके समूहसे पूजित और शांतिको करनेवाले सोलहवें तीर्थंकर श्री शांतिनाथ भगवंतको गणकी शांतिकी इच्छासे मैं प्रणाम करता हूं ॥२॥

दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुन्दुभिरासनयोजनघोषौ। आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मंडलतेजः

अर्थः—दिव्य वृक्ष, देव-पुष्पोंकी वृष्टि, दुंदुभि, आसन, योजन तक घोष (नाद), छत्र, दो चमर और भामंडल जिनके आगे शोभ रहे हैं ॥३॥

तं जगदर्च्चितशांतिजिनेंद्रं, शांतिकर शिरसा प्रणमामि। सर्वगणाय तु यच्छतु शांतिं, मह्यमरं पठते परमां च ॥४॥

अर्थः—सब जगतमें पूज्य और शांतिको करनेवाले श्री शांति जिनेंद्र भगवानको मैं मस्तकसे प्रणाम करता हू। ये शांतिनाथ प्रभु संघगणको तथा मुझे परम तत्काल शांति दें ॥४॥

येऽभ्यर्च्चिता मुकुटकुंडलहाररत्नैः, शक्रादिभिः सुरगणैस्तुतपादपद्माः। ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपास्तीर्थंकराः सतत शांतिकरा भवंतु ॥५॥

अर्थः—मुकुट, कुंडल, हार और रत्नोंसे युक्त इन्द्रादिकोने जिनकी पूजा की है और देवतागणने जिनके चरण-कमलकी पूजा की है और जो अपने उत्तम वंशसे जगतमें दीपकरूप हैं ऐसे वे तीर्थंकर जिन भगवंत मुझे हमेशा शांति करने वाले हों ॥५॥

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्रसामान्यत-

पोधनानाम्। देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शांतिं भगवान् जिनेंद्रः ॥६॥

अर्थः—पूजन करनेवालोंको, पालन करनेवालोंको, यतींद्रोंको, सामान्य तपस्वियोंको, देशको, राष्ट्रको, नगरको और राजाको श्री जिनेंद्र भगवान शांति करें ॥६॥

अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासनञ्च भामण्डलं दुंदुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥७॥

अर्थः—अशोकवृक्ष, देवताओंकी पुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, चमर, सिंहासन, भामंडल, दुंदुभि नाद और मस्तक पर छत्र ये आठ श्री जिनेंद्र भगवंतके प्रातिहार्य हैं ॥७॥

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्म्मिको भूमिपालः। काले काले च सम्यक् वर्षतु मघवा व्याधयो यांतु नाशम्। दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके। जैनेन्द्रं धर्म्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥८॥

अर्थः—सर्व प्रजाका भला हो, राजा धार्मिक और बलवान हो, वर्षा अपने समयमें अच्छी तरहसे हो. व्याधियोंका नाश हो, जगतमें जीवलोकमें दुष्काल, चोरी या

माहामारी (रोगोपद्रव) एक क्षणके लिये भी न हो। सब सुखको देनेवाले जिनेश्वरका धर्मचक्र हमेशा समर्थपनसे प्रवृत्त हो ॥८॥

प्रध्वस्तघातिकर्म्माणः केवलज्ञानभास्कराः।
कुर्वंतु जगतः शांतिं वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥९॥

अर्थः—घातीय कर्मका नाश करनेवाले, केवलज्ञानको प्रकाश करनेवाले, सूर्यरूप ऐसे श्री ऋषभादिक चौवीस तीर्थकर जगतमें शांति करें। ९॥

इच्छामि भंते चउवीशतित्थयरभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं अट्ठ महापाडिहेरसहियाणं चउतीस अतिशयविसेससंजुत्ताणं बत्तीसदेविंदमणिमउडमछयमहियाणं बलदेववासुदेवचक्कहररिसिमुणिजइ अणागारोवगूढाणं थुइसयसहस्सणिलयाणं उसहाइवीर पच्छिममंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खउ कम्मक्खउ वोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरण जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

अर्थः—हे भदंत ! चौवीस तीर्थंकरोंकी भक्ति करनेके लिये तथा उनकी आलोचना करनेके लिये मैं इच्छा करता हूं। पंच महाकल्याणकोंसे संपन्न, अष्ट प्रातिहार्य सहित, चौंतीस अतिशय युक्त, बत्तीस प्रकारके इन्द्र और छत्रधारी राजाओंसे पूजित, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ति, ऋषिगण, मुनिगण, यतिगण और अनगारोंसे सेवित, सैकडों और हजारों स्तुतियोंसे स्तुत्य, ऐसे ऋषभादिकसे वीर भगवंत-तक सर्व मंगलकारक महापुरुषोंको मैं तीन काल अर्चता हूं, पूजता हूं, वंदना करता हूं और नमस्कार करता हूं। जिससे दुःखोंका क्षय, बोधलाभ, अच्छी गतिमें गमन, समाधिसे मृत्यु (समाधिमरण) और जिनगुणकी प्राप्ति हो ॥

अथ पूर्वाह्निकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं चैत्य-पंचगुरुशांतिभक्तिं कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादिदोष-विशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं ॥

अर्थः—दिनके प्रथम भागमें देव-वंदनाके लिये पूर्वाचार्योंके अनुक्रमसे, सब कर्मोंके क्षयके लिये भावपूजा, वंदना और स्तवन सहित चैत्य तथा पंचगुरुकी शांति भक्ति करके अब उसमें जो कुछ न्यूनाधिक दोष हुआ हो तो उसकी

शुद्धिके लिये तथा अपने आत्माको पवित्र करनेके लिये मैं समाधि भक्ति कायोत्सर्ग करता हूं।

णमो अरहंताणं जाप्य ९ श्वासोच्छ्वास २७ सहित।

अथेष्टप्रार्थना–प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।

अर्थः—अब इष्ट प्रार्थना करते हैं-प्रथमानुयोगको, करणानुयोकाको, चरणानुयोगको और द्रव्यानुयोगको नमस्कार करता हूं।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे
संपद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥१॥

अर्थः—जिनशास्त्रका अध्ययन, जिनभगवंतकी स्तुति, नित्य सत्पुरुषोंका समागम, सदाचरणी पुरुषोंके गुणगणकी प्रशंसा, दोष कहनेमें मौनपना, सबको प्रिय और हित वचनका कहना, और आत्मतत्वमें भावना, ये सब जहांतक मोक्ष-हो वहांतक मुझे भव भवमें प्राप्त हों।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनद्र तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः ॥१॥

अर्थः—हे जिनेन्द्र! जहांतक मोक्षकी प्राप्ति हो वहां-

तक आपके चरण मेरे हृदयमें लीन हों और मेरा हृदय आपके दोनों चरणोंमें लीन हों ॥१॥

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेवय मज्झय दुक्खक्खयं दिंतु॥१॥

अर्थः—जो कुछ अक्षर, पद और मात्रासे हीन ऐसा मेरेसे पढ़ा गया हो वह ज्ञान-देवता मुझे क्षमा करें और मेरे दुःखका क्षय करें ॥१॥

नमोस्तु श्री आचार्यवंदनायां सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

अर्थः—अब आचार्यकी वंदनामें सिद्ध भक्ति कायोत्सगको करता हूं।

यहां-णमोकार मंत्र ९ वार २७ श्वोच्छ्वास सहित पढ़ें ॥

तवसिद्धे णयसिद्धे संयमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणंमि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥१॥

अर्थः—तप करके सिद्ध, नय करके सिद्ध, संयम करके सिद्ध, चारित्र करके सिद्ध, ज्ञान करके सिद्ध, और दर्शन करके सिद्ध ऐसे उन महात्माओंको मैं नमस्कार करता हूं॥१॥

समत्तणाणदंसणवीरीयसुहमं तहेव अवगहणम्।
अगुरुलहुमव्वावाहं अहगुणा हुंति सिद्धाणं ॥२॥

अर्थः—सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, अनंत बल, अनंत सुख, अमूर्तिक गुण, गुरुता और लघुताका अभाव, जन्म मरणका अभाव, ये आठ गुण सिद्ध पुरुषके होते हैं ॥२॥

(नमोस्तु आचार्यवंदनायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं जाप्यं ९)

अर्थः—नमस्कार हो, आचार्य वंदनामें श्रुति भक्ति कायोत्सर्ग मैं करता हूं।

णमोकार मंत्र नौवार २७ श्वोसोच्छ्वास सहित पढें ॥

कोटीशतं द्वादश चैव कोटचो लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि ॥१॥

अर्थः—एकसौ बारह क्रोड तिरासी लाख अठावन हजार संख्यावाले पंच पद ज्ञानको मैं नमस्कार करता हूं ॥१॥

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवे हि गंथिय सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो सुदणाणमहोवहिं सिरसा ॥२॥

अर्थः—अर्हंत भगवानका कहा हुआ और गणधर देवने गूंथा हुआ ऐसा शुद्ध ज्ञान रूपी बडा समुद्र उसको, भक्तिसे युक्त ऐसा मैं मस्तक नवाकर प्रणाम करता हूं ॥२॥

(नमोस्तु 'आचार्यवंदनायां आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं जाप्य ९)

अर्थ:—नमस्कार हो। अब आचार्य वंदनामें आचार्य भक्ति कायोत्सर्ग करता हूं ॥३॥

णमोकार मंत्र ९ वार २७ श्वासोच्छ्वास सहित पढ़ें।

श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः॥१॥

अर्थ:—शास्त्ररूप समुद्रको पार पाये हुए, अपने और दूसरोंके मतको जाननेमें चतुर बुद्धिवाले, अच्छा चारित्र और तपके भंडाररूप तथा गुणोंसे बड़े ऐसे आचार्य गुरुको मैं नमस्कार करता हूं ॥१॥

छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकारणसंदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिए सदा वंदे ॥२॥

अर्थ:—छत्तीस गुणोंसे युक्त, पांच प्रकारके आचारको बतानेवाले और शिष्योंको अनुग्रह करनेमें कुशल ऐसे धर्माचार्यको मैं हमेशा वंदना करता हूं ॥२॥

गुरुभत्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरम्।
छिण्णंति अट्ठकम्मं जम्ममरणं ण पावंति ॥३॥

अर्थ:—भव्य प्राणी गुरुभक्तिरूप संयमसे इस घोर

संसाररूपी सागरको तर जाते हैं, अष्ट कर्मोंको छेदते हैं और फिर जन्म मरणको प्राप्त नहीं होते ॥३॥

ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता ध्यानाग्निहोत्राकुलाः
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियासाधवः।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चंद्रार्कतेजोऽधिका
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः प्रीणंतु मां साधवः ॥४॥

अर्थः—जो नित्य व्रत मंत्ररूप होममें तत्पर हैं, ध्यानरूपी अग्निहोत्रमें आकुल हैं, षट्कर्ममें लवलीन हैं, तपरूपी धनसे धनवान हैं, साधुकी क्रियाओंको साधनेवाले हैं, शीलरूपी कवचको धारण करनेवाले हैं, गुणरूपी शस्त्रोंको रखनेवाले हैं, चंद्र और सूर्यके तेजसभी अधिक और मोक्षके द्वारके किवाडको तोडनेमें शूरवीर हैं, ऐसे ये साधु मेरे पर प्रसन्न हों ॥४॥

गुरवः पांतु वो नित्यं ज्ञानदर्शननायकाः।
चारित्रार्णवगंभीरा मोक्षमार्गोपदेशकाः ॥५॥

अर्थः—ज्ञान तथा दर्शनके नायक, चारित्ररूपी समुद्रसे गंभीर और मोक्ष-मार्गका उपदेश करनेवाले ऐसे गुरु हमारी हमेशा रक्षा करें ॥५॥

॥ इति बृहत सामायिकं समाप्तम् ॥

णमोकार मंत्र १०८ वार गिनकर फिर खडे हो जावें और इस प्रकार पढ़ें-

इच्छामि भंते इरियावहियस्स आलोचेऊ पुवुत्तरदक्षिणपच्छिम चउदिसु विदिसासु विहर-माणेण जुगंतर दिठिणा दठव्वा डवडव चरियाए पमाददोषेण। पाणभूद जीव सताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा, समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

इस प्रकार पढके फिर ९ वार णमोकार मंत्र चारों दिशाओंमें पढ करके तीन ३ आवर्त और एक १ शिरोनति करें। फिर आलोचना पाठ और मिच्छामि दुक्कडं पढ़ें॥

लघु प्रतिक्रमण।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ३।

चिदानंदैकरूपाय जिनाय परमात्मने।
परमात्मप्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः॥

इतर निगोद सात लाख, नित्य निगोद सात लाख, पृथ्वीकाय सात लाख, अपकाय सात लाख, तेउकाय सात लाख, वायुकाय सात लाख, वनस्पतिकाय दश लाख, बे इंद्रिय दोय लाख, त्री इंद्रिय दोय लाख, चौ इंद्रिय दोय लाख, नरकगति चार लाख, देवगति चार लाख, तिर्यंच गति चार

लाख, मनुष्य गति चौदा लाख, ऐवं काये चौरासी लाख, मातापक्षे पितापक्षे एकसो सांठे नीन्यानवे लक्ष कुल कोटी लक्ष सुक्षम बादर पर्याप्त अपर्याप्त लब्धि पर्याप्त कोइ जीवनी विराधना करी होय, रागद्वेष करीने पाप लाग्यो होय-तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

पंच मिथ्यात्व, बार अविरत, पंदर, योग पच्चीस कषाय, एवं सत्तावन आस्रव करी पाप लाग्यो होय-(आंचली) तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

तीन दंड, तीन शल्य, तीन गर्व करीने पाप लाग्यो होय-तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

राज कथा, चोर कथा, स्त्री कथा, भोजन करीने पाप लाग्यो होय-तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

चार आर्तध्यान, चार रौद्रध्यान करीने पाप लाग्यो होय-तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

आचार अनाचार करीने पाप लाग्यो होय-तस्स मिच्छामि दुकडं।

पंच मिथ्यात्व करीने पाप लाग्यो होय तस्स मिच्छामि दुकडं।

पंच आस्रव करीने पाप लाग्यो होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

पंच छट्टा, व्रत छठा, त्रस जीवनी विराधना करीने पाप लाग्यो होय-तस्स मिच्छामि दुकडं।

सप्त व्यसन सेवे करीने पाप लाग्यो होय—तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सप्त भय करीने पाप लाग्यो होय—तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

अष्ट मूळगुण व्रतना अतिचार करीने पाप लाग्यो होय—तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

दश प्रकारना बाहरंग परिग्रह करीने पाप लाग्यो होय—तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

चौद प्रकारना अंतरंग परिग्रह करीने पाप लाग्यो होय—तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

पंदरा प्रमाद करीने पाप लाग्यो होय—तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

पच्चीस कषाय करीने पाप लाग्यो होय—तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

पंच अतीचार करीने पाप लाग्यो होय—तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

बारे समस्त नहीं करीने पाप लाग्यो होय—तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

रौद्र परिणामना दुर्चितवन करीने पाप लाग्यो होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

हिंडता, हालता, बोलता, चालता, सुता, बेसता, मार्गने विषे जाणे अजाणे दीठे अणदीठे कंई पाप लाग्यो होय—तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सुक्षम बादर कोई जीव चपायो होय, भय पाम्यो होय, त्रास पाम्यो होय, वेदना पाम्यो होय, छेदना पाम्यो होय–तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

यति सर्वे मुनि आर्जिका श्रावक श्राविका सर्वे प्रकारे निंदा करी होय, करावी होय, सांभळी होय, संभळावी होय, पराई निंदा करीने पाप लाग्यो होय–तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

देवगुरु शास्त्रनो अविनय थयो होय–तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

निर्मल द्रव्यना पाप लाग्या होय- तस्स मिच्छामि दुक्खडं।

बत्रीस प्रकारना सामायिकना दोष लाग्या होय–तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

पंच इंद्रिय व छट्ठा विषय मन करीने पाप लाग्यो होय–तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

जाणे अणजाणे कंई पाप लाग्यो होय–तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

मेरे कोई साथे राग नहि, द्वेष नहीं, वेर नहि, मान नहि, माया नहि, मारे समस्त जीव साथे उत्तम क्षमा कर्म-क्षयनता, समाधि मरण, चारों गतिका दुःख निवारण हो॥ इति लघु सामायिक प्रतिक्रमण। भुलचुक कानो मात्रा माफ।

॥ संपूर्णम् ॥

बृहत् प्रतिक्रमण।

जीवे प्रमादजनिताः प्रचुराः प्रदोषाः।
यस्मात्प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयांति॥
तस्मात्तदर्थममलं गृहिबोधनार्थं।
वक्ष्ये विचित्रभवकर्मविशोधनार्थम्॥१॥

अर्थः—जीव प्रमाद और अज्ञानतासे अनंत दोष (पापकर्म) करते हैं। प्रतिक्रमण करनेसे उन दोषोंकी शांति हो जाती है इसलिये कृत-कर्मोंकी शुद्धिके लिये यह प्रतिक्रमणका स्वरूप गृहस्थोंके लिये प्रतिपादन किया जाता है।

पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना।
रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम्॥
त्रैलोक्याधिपतेर्जिनेन्द्र भवतः श्रीपादमूलेऽधुना।
निंदापूर्वमहं जहामि सततं वर्वर्तिषुः सत्पथे॥२॥

अर्थः—हे त्रैलोक्य प्रभो! हे जिनेन्द्र! मैं बड़ा पापी,

दुष्ट, अज्ञानी, मायाचारी और लोभी हूं। मैंने अपने मनको रागद्वेषसे मलिनकर अनंत दुष्कर्म किये हैं। हे जिनराज! अब मैं आपके चरण-कमलोंकी शरण लेकर आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूं। और सन्मार्गमें चलनेके लिये बाध्य होता हूं तथा भविष्यमें मुझसे कुत्सित कर्म न हों, ऐसी मेरी इच्छा है।

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मैत्ती मे सव्वभूदेसु वैरं मज्झ ण केणवि ॥२॥

अर्थः—मैं समस्त जीवोंपर क्षमा करता हूं। और मुझे भी सब जीव क्षमा करो। मेरी समस्त जीव मात्रमें मित्रता हो। मेरे साथ किसीका भी वैर नहीं है।

भावार्थः—साम्यभाव धारण करनेके लिये सबसे प्रथम यह आवश्यक है कि अपने मनकी अत्यंत विशुद्धि करे और वह इस प्रकार-कि मनको विकारित करनेवाले क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्षा आदि दुर्गुणोंको हृदयसे निकाल डाले, किसीने भी अपना अनिष्ट किया होता हो तो उसके ऊपर क्षमा धारण करें, इतना ही नहीं किन्तु उसके साथ बंधुत्व-भाव रहे। कदाचित् अपनेसे किसीका अनिष्ट होता हो तो उससे अपने अपराधकी क्षमा चाहे और भविष्यमें जीव-मात्रको अपना बंधु समझकर किसीसे विरोध न कर साम्यभाव धारण करना चाहिये।

रागबंध य दोषं च हरिस्सं दीणभावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरिदं च वोस्सरे ॥४॥

अर्थः—मैं रागसे किया हुआ कर्मबंध, अनिष्ट संयोग और इष्ट वियोग होनेसे उत्पन्न हुआ द्वेष, विषय प्राप्तिसे उत्पन्न हुई दीनता, अभिमानसे उत्पन्न हुई मदोन्मत्तता, इस लोक और परलोक सम्बन्धी भय, इष्ट वियोगसे उत्पन्न हुआ शोक, परवस्तुकी आकांक्षा रूप मनोविकारसे उत्पन्न हुआ रतिभाव, और अरतिभाव आदि समस्त विकार भावोंको छोडता हूं। इस प्रकार समस्त पर द्रव्यसे राग-द्वेष, हर्ष-विषाद आदि व्यामोहताका परित्याग करे और आत्माकी परम विशुद्ध अवस्थाका विचार करे।

हा दुट्ठ कयं हा दुट्ठ चिंतियं भासियं च हा दुट्ठं।
अंतो अंतो डज्झमि पच्छुत्तावेण वेयंतो ॥५॥

अर्थः—हाय ! हाय !! मैंने दुष्ट कर्म किये, हाय ! हाय !! दुष्ट कर्मोंका वारवार चिंतवन किया। हाय ! हाय !! मैंने दुष्ट मर्मभेदक वचन कहे। इस प्रकार मन वचन और कायाकी दुष्टतासे मैंने अनंत कुत्सित कर्म किये। इन कार्योंके बदले अब मुझे अत्यंत पश्चात्ताप होता है और इस अज्ञान दशासे मेरा अंतःकरण अत्यंत क्लेशित हो रहा है। मैं कृत कर्मोंका जैसे स्मरण करता हूं वैसे मुझे मेरी आत्मापर अतिशय ग्लानि उत्पन्न होती है और पश्चात्ताप होता है।

नोट—परम पवित्र अरहंत भगवान्के समक्ष अपने मन वचन कायसे किये हुए दोषोंको कहे, आलोचना करे, गर्हा करे, और आत्मनिंदापूर्वक प्रतिक्रमण करे।

दव्वे खेत्ते काले भावे य कदा वराहसोहणयं।
णिंदणगरहणजुत्तो मणवचिकायेण पडिकमणं॥६॥

अर्थः—द्रव्य क्षेत्र काल और भावके निमित्तसे किसी जीवकी विराधना अथवा प्राणपीडा हुई हो, वह मैं आत्मनिंदा और गर्हापूर्वक मन वचन कायकी शुद्धिसे परित्याग करता हूं।

एइंदिय बेंदिय तेइंदिय चउरेंदिय पचेंदिय पुढविकाइय, आउकाइय, तेउकाइय, वाउकाइय, वणप्फदिकाइय, तसकाइय एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

अर्थः—एकेन्द्रिय जीव, दो इन्द्रिय जीव, तीन इंद्रिय जीव, चार इन्द्रिय जीव, पांच इन्द्रिय जीव, पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रस कायके जीवोंको मैंने स्वतः मारे हों, दूसरेसे मराये हों, अन्यके मारने पर अनुमोदना की हो, अथवा उक्त प्रकारके

जीवोंको संताप दिया हो, दूसरेसे संताप दिलाया हो, अन्यके संतापित करनेमें सहमत हुआ हो। अथवा प्राणियोंके अंगोपांगका वियोग किया हो, कराया हो, करनेको भला माना हो इत्यादि अनेक प्रकार मुझसे जिन जीवोंको पीडा हुई है, उससे उत्पन्न हुए पापकर्मोंका परित्याग करता हूं। मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे जिन-जीवोंका घात मुझसे हुआ है वह निरर्थक हो।

दंसणवयसामाइय पोसहसचित्तरायभत्तीय।
बम्भारंभपरिग्गह अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदो य॥
एयासु यथा कहिद पडिमासु पमादाइकया।
इचारं सोहणट्ठं छेदोव्वट्ठावणं होउ मज्झं॥

अर्थः—दर्शन १ व्रत २ सामायिक ३ प्रोषधोपवास ४ सचित्तत्याग ५ रात्रिभुक्तत्याग ६ ब्रह्मचर्य ७ आरंभत्याग ८ परिग्रहत्याग ९ अनुमतित्याग १० और उद्दिष्टत्याग ११ इस प्रकार श्रावककी ग्यारह प्रतिमाएं होती हैं। इन प्रतिमाओंका व्यक्तरूप अथवा समस्तरूप अभ्यासरूप अथवा व्रतरूप पालन पाक्षिक, नैष्ठिक श्रावक करते हैं। प्रतिमा धारणा चाहे किसी प्रकारसे हो, परंतु संभव है कि प्रमाद और अज्ञानसे अतीचार-अनाचार अथवा व्रतभंगरूप दोष दोष लगे हों, उनकी मैं उपस्थापना करता हूं।

अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय सव्वसाहु

सक्खिकय सम्मत पुव्वगं सव्वदं दिढव्वद समारोहिय मे भवदु मे भवदु मे भवदु ॥

अर्थः—अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व्वसाधु इन पंच परमेष्ठोकी साक्षीपूर्वक सम्यक्त सहित उत्तम व्रतोंकी दृढता मेरे हो । सम्यग्दर्शन सहित सदाचारकी प्राप्ति मेरे हो ।

देवसियं[1] पडिक्कमणाए [2]सव्वाइचार सोहिणिमित्तं पुव्वापरियकमेण आलोयण सिरी सिद्धभत्ति काउस्सग्गं करेमि ।

---

१ प्रतिक्रमण चार प्रकारका होता है। दैवसिक (दिवस संबंधी), रात्रिक (रात्रि संबंधी), पाक्षिक (१५ दिन संबंधी), (मासिक-चातुर्मासिक और सांवत्सरिक); यदि दिवसका करना है तो देवसिय शब्द लगाओ। यदि रात्रिका प्रतिक्रमण करना है तो राइय शब्द लगाओ।

२ अतीचार-व्रतादिकोंका पालन करनेमें बाह्याभ्यंतर कारणोंके लिये व्रतोंकी दृढता रखते हुए भी कुछ भंगरूप दोषोंका उत्पन्न करना अतीचार है। भंगाभंगवृत्तिको अतीचार कहते हैं। अनाचार—मनमें कुछ विकार होना और ऐसे प्रमादसे व्रतमें शिथलताका होना अनाचार है। व्रतभंग-व्रतका एक-देश छेद करना व्रत भंगता है। और अनर्गल (स्वेच्छाचार पूर्वक) प्रवृत्ति होकर स्वच्छंद रहना व्रतनाशता है। व्रतका पालन-मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे होता है। व्रतोंके पालन करनेके लिये बाह्याभ्यंतर शुद्धिकी विशेष आवश्यकता होती है। आभ्यंतर शुद्धिके लिये मनकी पवित्रता प्रधान कारण है।

अर्थः—दिवस संबंधी शारीरिक, मानसिक और वाचनिक कार्य करनेमें जो दोष मैंने किये हों, उनका प्रतिक्रमण करता हूं। और अपने मनकी विशुद्धिके लिये अपने किये हुए दोषोंकी वार २ आलोचना करता हूं। दोषोंसे सर्वथा मुक्त श्री सिद्ध परमात्माका स्वरूप चिन्तवन कर सिद्ध भक्तिमें लीन होता हूं।

नोट—सिद्ध भक्तिके लिये ९ वार णमोकार मंत्रकी जाप देना चाहिये। और-णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरीयाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। चत्तारि मंगलं, अरहंत मंगलं, सिद्धमंगलं, साहूमंगलं, केवलिपण्णतो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगोत्तमा, अरहंत लोगोत्तमा, सिद्ध लोगोत्तमा, साहुलोगोत्तमा, केवलिपण्णतो धम्मो लोगोत्तमा। चत्तारिसरणं पव्वज्जामि, अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहुसरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

मानसिक ग्लानिसे ही प्रायः व्रतोंमें अतीचार लगते हैं। इस लिये मनको सदैव शुद्ध रखना चाहिये। बाह्य शुद्धि भी व्रतोंको स्थिर करनेमें प्रधान कारण है। चंचल बुद्धि कुछ सहज निमित्तके मिलने पर ही चलित हो जाती है। और मन तथा आत्माके ऊपर अपना अधिकार जमा लेती है। यह सब जानते हैं कि संगतिका असर तत्काल होता है "चिरंतनाभ्यासनिबंधनेरिता, गुणेषु दोषेषु च जायते मतिः" इसलिये बाह्यशुद्धि पर ध्यान रखना चाहिये।

अंड्ढाईदीवदो समुद्देसु पण्णारस कम्मभूमीसु जाव अरहंताणं भयवंताण आदियराण तित्थ-यराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं धम्मायरियाणं धम्मदेसयाणं धम्मणायगाणं धम्म-वरचावरंगचक्कवट्टीणं देवादिदेवाणं णाणाणं, दंस-णाणं चरित्ताणं सदा करोमि किरियम्मं करेमिभंत्ते पडिक्कमणं सावज्जोगं पच्चक्खामि जावनियमं तिविहेण मणसा वचिया कायेण ण करेमि ण कारेमि अण्णंपि । करंतं ण समणुमणामि तस्स भंत्ते अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोक्कारं पज्जुवासं,

---

१ अढाई द्वीप और पंद्रह कर्मभूमिमें होनेवाले सयोग—केवली, (अरहंत) संसारके भयको नाश करनेवाले तीर्थंकर, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और सर्वसाधु ये पांच परमेष्ठी हैं। ये सत्य मार्गका प्रत्यक्ष अनुभव कराते है। इसलिये इनकी साक्षी पूर्वक सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रको धारण करता हूं। दूसरोंको इस सत्यमार्ग पर चलनेका उपदेश करूंगा। मुझसे इस मार्गमें चलते हुए अतीचार आदि दोष लगें हों उनकी शुद्धिके लिये मन वचन कायकी विशुद्ध भावनासे आत्मनिंदा-पूर्वक त्याग करता हूं।

करेमि तावकायं पावकम्मं डुच्चरियं वोस्सरामि।
थोस्साम्यहं जिणवरे तिथ्थयरे केवली अणंत जिणे।
णरपवर लोयमहिए विहुयरयमले महप्पणे ॥
लोयस्सु जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो ॥
उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च।
सुमइं च पोमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥
सुविहिं च पुप्फयंतं सीयलसेयं च वासुपूज्जं च।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि।
कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च मुणिसुव्वयं च।

---

१ कर्ममल रहित, त्रिलोक पूज्य और ज्ञानसे परिपूर्ण तीर्थंकर, केवली भगवान और केवली प्रणीत जिन धर्मको पुनः पुनः स्मरण कर वंदना करता हू। ऋषभादि वीरान्त चतुर्विंशति देवको मात्र भक्तिसे वंदना करता हूं। ये चौबीस भगवान् जन्म मरणादि समस्त दोष रहित, परम शांति, अनंत सुखसंपन्न, मंगलमय, लोकोत्तम, और शरणभूत हैं। सिद्ध परमात्मा भी समस्त कर्म मल रहित, परम विशुद्ध, शुद्ध चैतन्य रूप, अनतगुणोंके पिंड हैं। शुद्धात्माका प्रत्यक्ष दर्शन इनकी भक्तिसे प्राप्त होता है। तीर्थंकर केवली, परम, ध्यानकी मूर्ति होनेसे योगी हैं। जिन चैत्यालय यह धर्मका आयतन है। इसलिये मैं प्रतिक्रमण करते समय तीर्थंकर, केवली, सिद्ध, जिन धर्म, जिन चैत्यालयको वंदना करता हूं।

णमिं वंदे अरिट्ठणेमिं तहपासं वड्ढमाणं च।
एवमए अभिच्छुया विहुयरयमला पहीणजरमरणा॥
चउवीसंपि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु।
कित्तिय वंदिय महिया ऐदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोगाणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं।
चंदेहिं णिम्मलयरा आईच्चा उहियं पयासंता।
सायरमिव गंभीरा सिद्धासिद्धं मम दिशंतु।
यावंति जिनचैत्यानि विद्यन्ते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या त्रिःपरीत्य नमाम्यहं॥

नोट—'णमो अरहंताणं' यहांसे प्रारंभ कर "त्रिपरीत्य नमाम्यहं" पर्यन्त मूल पाठको पढ़कर नव वार नमस्कार मंत्रकी जाप्य देना चाहिये। और यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जिस २ स्थान पर इस पाठका उल्लेख किया हो वहांपर यह पाठ पढ़कर जाप देकर कायोत्सर्ग करना चाहिये।

श्रीमते वर्द्धमानाय नमो नमितविद्विषे।
यद् ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते॥

अर्थः—मोहादि भयंकर शत्रुओंका नाश करनेवाले, और लोकको जाननेवाले ऐसे श्री वर्द्धमान भगवानके लिये नमस्कार है।

तवसिद्ध णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मिय सिद्धे सिरसा णमस्सामि ॥

अर्थः—तप, नय ज्ञान, संयम, चारित्र, ज्ञान और दर्शनादिसे सिद्धपदको प्राप्त हुए सिद्ध परमात्माको नमस्कार है।

इच्छामि भंते सिद्धभत्ति काउस्सगो कउ तस्सा लोचेउं सम्मणाण सम्मदंसण सम्मचरित्त जुत्ताणं अट्ठ विहकम्मविप्पमुकाणं, अट्ठगुण संपण्णाणं उढ्ढलोयम्मिथयम्मि। पयट्टियाणं तव सिद्धाणं णय-सिद्धाण संजमसिद्धाणं चरित्तसिद्धाणं, सम्मणाण सम्मदंसण सम्मचरित्त सिद्धाणं अतीदाणागद-वट्टम्माणकाल तय सिद्धाणं सव्व सिद्धाणं सया-णिच्च कालं अंचेमि पूज्जेमि वंदामि णमस्सामि दुक्ख-क्खउ कम्मक्खउ वोहिलाहो सुगइगमणं समाहि-मरण जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

इच्छामि भंते देवसिय आलोचेउं सिद्धभक्ति कायोत्सग्गं करेमि।

अर्थः—हे भगवन्! मैं सिद्धभक्ति धारण करनेके लिये दिवससंबंधी कृत कर्मोंकी आलोचना करता हूं। सम्यग्दर्शन

सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रमयी, आठ कर्म रहित, आठ गुण सहित, लोकके अंत भागमें विराजमान तप, ज्ञान, संयम, सम्यक्चारित्र, दर्शन और परमध्यानादि उत्तम गुणोंसे सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हुए भूत, भविष्य और वर्तमानकाल संबंधी समस्त सिद्ध भगवानकी मैं अभ्यर्थना करता हूं, पूजा करता हू, गुणोंका चिंतवन करता हूं, वंदना करता हूं, नमस्कार करता हूं। सिद्ध भक्तिसे मेरे दुःखोंका नाश, सम्यग्दर्शन-ज्ञान–चारित्रकी प्राप्ति, सुगति गमन, समाधिमरण और जिनगुण प्राप्ति हो।

भावार्थ—मेरी आत्मा सिद्धात्माके समान शुद्ध अनंत गुणमय, सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रमयी निष्कलंक और अक्षय है। परंतु कर्ममलसे विकृत रूप हो रहा है। "मेरी आत्मा परम शांत और सुखी हो" इस भावनाकी सिद्धिके लिये सिद्धभक्ति धारण करता हूं। इस प्रकार सिद्धोंके गुणोंका चिन्तवन कर आत्मस्वरूपका विचार करते हुए अपने दोषोंकी आलोचना करे।

(९ वार नमस्कार मंत्रकी जाप्य देकर सिद्ध भक्तिका कायोत्सर्ग धारण करे।)

श्रावककी ग्यारह प्रतिमाओंका स्वरूप।

पंचुंबर सहियाइ सत्तवि वसणाइ जो विवज्जइ।
सम्मतविशुद्धमइ सो दंसण सावउ भणिओ ॥१॥

अर्थः—पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक इस प्रकार श्रावकके तीन भेद हैं। पाक्षिक श्रावक वह हो सक्ता है जो सबसे प्रथम श्री जिनेंद्र देवके प्रतिपादित सात तत्वोंका यथार्थ श्रद्धान करे क्योंकि धर्मकी मूल भीत्ति श्रद्धा है-विश्वास है। बिना इसके धर्मपथका अनुयायी हो नहीं सक्ता। इसका कारण एक यह भी है कि सुख शांति और प्रेम ये तीनों धर्मके अंग हैं और ये विना विश्वासके यथार्थ नहीं हो सक्ते हैं। इसलिये जिन आज्ञाको हृदयसे धारण करता हुआ कषायोंके घटानेके लिये (कषायें ही आत्म-स्वरूपके प्रकट होनेमें बाधक हैं) सदाचारका पालन करे। पाक्षिक श्रावक जिनदर्शन १, जलगालन २, रात्रिभोजन-त्याग ३, पांच उदंबर (वडफल-पीपलफल-कटूमर-पाकरफल-उदंबर) त्याग ४, मद्यत्याग ५, मधुत्याग ६, मांसत्याग ७ और जीव दया प्रतिपालन ८ ये आठ मूलगुणोंका पालन करता है। अभ्यासके लिये पांच अणुव्रत (हिंसा-झूठ-चोरी-कुशीलका त्याग और परिग्रहका परिणाम), तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत आदि व्रतोंका पालन करता है। सप्त व्यसनों (जुआ खेलना, मांस भक्षण, मद्यपान, शिकार खेलना, चोरी करना, वेश्यागमन करना और परस्त्री सेवन करना) को उभय लोकमें दुःखदायक समझकर सेवन नहीं करता है। अभक्ष्य सेवन भी नहीं करता है। बाह्य और आभ्यंतर शुद्धिके लिये पूर्ण प्रयत्नशील होता है। षट्

आवश्यक (देव पूजा १, गुरु उपासना २, स्वाध्याय करना ३, संयम पालन करना ४, तप धारण करना ५, और सुपात्रको दान देना ६) कर्मोंको नियमित करता है। ये सब कर्तव्य पाक्षिक श्रावकके हैं। इन कर्तव्यके साथ धार्मिक नीति और व्यवहार नीति भी पालन करना चाहिये। सबसे प्रथम पाक्षिक श्रावकको २५ दोष रहित सम्यक् दर्शन निर्दोष पालन करना चाहिये।

नैष्ठिक श्रावक उक्त समस्त कर्तव्योंको पूर्ण रूपसे पालन करता है तथा सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि विशेष रखता है। ग्यारह प्रतिमायें नैष्ठिक तथा साधक श्रावककी होती हैं। दर्शनप्रतिमा धारण करनेवालोंके भी उक्त कर्तव्य हैं।

पंच अणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खाव्वयाइं चत्तारि विजाणि विदियम्मि वाणम्मि

अर्थः—पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, और चार शिक्षाव्रतोंको जो नियमसे पालन करता है वह व्रतप्रतिमा धारक है।

प्राणादिवादि विरदि सच्च मदत्तस्स वज्जणं चेव।
थुलयड बंभचेर इच्छाये गथपरिमाणं ॥३॥

अर्थः—स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी, कुशीलका त्याग और परिग्रहका परिमाण ये पांच अणुव्रत हैं।

जे तसकाइय जीवा पुव्व णिद्दिठाण हिंसि दव्वा।
ए इदिय विणुकारण तं पढमं वदं थूलं ॥४॥

अर्थः—जो आंखोंसे दीख सकें, ऐसे त्रस जीवोंको नहीं मारना तथा विना प्रयोजन एकेन्द्रिय जीवोंकी हिंसा नहीं करना सो प्रथम अहिंसाणुव्रत है।

अलियंण जंपणीयं पाणिवह करंतु सच्चवयणंपि।
रोयेण य दोसेण य णेयं विदिय वयं थूलं ॥५॥

अर्थः—राग द्वेषसे अनीति वचन नहीं कहना, और जिन वचनोंके कहनेसे किसी जीवकी हिंसा होती हो ऐसा सत्य वचन भी नहीं बोलना सो सत्याणुव्रत है।

पुरगामि पट्टणाइसु पडियं णट्ठं च णिहियवीसरीय।
परदव्वमगिण्हं तस्स होय थूल वयं तिदिय ॥६॥

अर्थः—नगर, ग्राम और चोडाया आदिमें पडा हुआ, भूला हुआ, गिराहुआ, पराया (अन्यका) द्रव्य नहीं लेना सो अचौर्याणुव्रत है।

पव्वेसु इत्थि सेवा अणगकीडा सयाविवज्जंतो।
थूलयड वंभचारी जिणेहिं भणिओ पवयणम्मि।७।

अर्थः—पर्वके दिवसोंमे सर्वथा स्त्री मात्रका त्याग करना

परस्त्रीका सेवन नहीं करना, और अनंग क्रीडा नहीं करना सो ब्रह्मचर्याणुव्रत हो !

जं परिमाणं कीरइ धणधाण्णहिरण्णकंचनाईण।
तं जाण पंचमवयं णिद्दिट्ठ मुवासयाज्झयणे ॥८॥

अर्थः—धन, धान्य, रत्न, सुवर्ण आदि परिग्रहका परिमाण करना सो परिग्रहपरिमाण नामका अणुव्रत है। इसप्रकार ये पांच अणुव्रत हैं।

पुव्वुत्तरदक्खिणपच्छिमासु काऊण जोयणपमाणं।
परदो गमणणियत्ती दिसी गुणव्वयं पढमं ॥९॥

अर्थः—पूर्वोत्तरादि चारों दिशामें परिमाणकर उसके बाहर नहीं जाना सो प्रथम गुणव्रत दिग्व्रत है।

वयभंगकारणं होई जम्मि देसम्मि तत्थ णियमेण।
कीरइ गमणणियत्ती तं जाण गुणव्वय विदियं।१०।

अर्थः—दिग्व्रतकी आभ्यंतर दिशाओंकी मर्यादाकर बाहर नहीं जाना तथा जिस देशमें व्रतके भंग होनेकी संभावना हो ऐसे देशमें नहीं जाना सो द्वितीय देशव्रत नामक गुणव्रत है।

अयदंड पास विक्किय कूडतुला माणकूड परिमाणं।
जं संग हो ण कीरइ तं जाण गुणव्वयं तिदियं।११।

अर्थः—अनर्थदण्ड पापोपदेश, हिंसादान, दुःश्रुति, अपध्यान और प्रमादचर्या भेदसे पांच प्रकार है। तथापि इसके अनंत भेद होते हैं, इन सबका यही अभिप्राय है कि जिन कार्योंसे कुछ प्रयोजन विशेष शुद्ध न होता हो और हिंसा तथा क्लेश परिणाम अधिक होते हों ऐसे लोहेके शस्त्र, लाठी आदि हिंसाका व्यापार, झूठी तराजू, खोटे बांट आदिसे व्यापार आदिका त्याग करना सो तृतीय गुणव्रत है।

जं परिमाणं कीरइ मंडण तंबुलगंधपुप्फाणं।
तं भोयविरइ भणिय पढमं सिक्खावयं सुत्ते।१२।

अर्थः—भोग और उपभोगसे विषयोंका सेवन होता है। भोग उसे कहते हैं जो एकवार भोगनेमें आवे। शरीरको शृंगार करनेवाली चीजें, पान, सुगंधित पदार्थ-तेल इत्र पुष्पादिका परिमाण करना सो भोगविरति शिक्षाव्रत है।

सगसत्तीए महिला वत्थाभरणाण जंतु परिमाणं।
तं परिभोय णिव्वुत्ती विदियं सिक्खावयं जाणे।१३।

अर्थः—वार २ भोगनेमें आवे उसे उपभोग कहते हैं। उपभोगरूप स्त्री, वस्त्र, आभरण आदिके सेवन करनेका नियम करना सो दूसरा शिक्षाव्रत है।

अतिहिस्स संविभागो तिदियं सिक्खावयं मुणेयव्वं।
तत्थ वि पंचाहियारा णेया सुत्ताण मग्गेण ।१४।

अर्थः—उत्तम मध्यम और जघन्य भेदसे पात्र तीन प्रकार हैं। पात्रमें चार प्रकारका दान देना तथा चैत्य, चैत्यालय, सिद्धक्षेत्र, शास्त्र, स्वाध्यायालय, विद्यालय, औषधालयमें दान देना सो तृतीय शिक्षाव्रत है।

धरिऊण वत्थमेत्त परिग्गहं छंडिऊण अवसेसं।
सगिहे जिणालये वा तिविहाहारस्स वोस्सरणं॥
जं कुणदि गुरुपयासे सम्ममालो इऊण तिविहेण।
सल्लेहणं चउत्थं सुत्ते सिक्खावयं भणियं॥

अर्थः—वस्त्रमात्र परिग्रहको रखकर अवशेष समस्त परिग्रहका त्यागकर अपने घरमें अथवा जिनालयमें सल्लेखना धारण करे। व्रतफल सिद्धि, समाधि मरणसे ही होती है इतना ही नहीं किंतु समाधि मरण आत्म-सिद्धिका अंतिम उपाय है-सुगतिका बीज है। समाधिमरण विधि-प्रतिकार रहित मरणके कारण उपस्थित होने पर साम्यभाव और शांतिसे धैर्यपूर्वक, क्रोधादि विकार रहित शरीरका विसर्जन करना समाधिमरण है। और उसकी सिद्धिके लिये क्रमसे तीन प्रकारके आहारोंका त्यागकर गर्म जल अथवा तक्र

(छांछ-मट्ठा) का सेवन करे, और अनावश्यक्ता होने पर उसका भी त्याग करे। अपनी पर्यायमें किये हुए भले बुरे कर्मोंकी आलोचना पूर्वक प्रतिक्रमण करे, पश्चात्ताप करे, और सबसे क्रोधादि विकारभावोंकी क्षमा मांगकर शांतिसे णमोकार मंत्रका ध्यान धरता हुआ शरीरको छोडे। यह चोथा सल्लेखना नामका शिक्षाव्रत है। इस प्रकार दूसरी प्रतिमा धारण करनेवाला श्रावक इन बारह व्रतोंका पालन करता है।

तीसरी सामायिक प्रतिमा।

जिणवयणधम्मचेइय परमेट्ठि जिणालयं ण णिच्चंति।
जं वंदणं तिआलं करेइ सामाइयं तं खु॥

अर्थः—बाह्य और आभ्यंतर शुद्धिको धारणकर, पूर्व अथवा उत्तर दिशाकी तरफ मुखकर, एकान्त निर्भय स्थानमें, १२ आवर्तको करता हुआ ४ प्रणाम (दिशावर्ती चैत्य चैत्यालय मुनि आदिको) चारों दिशामें करे और स्थिर मन वचन कायसे समता पूर्वक सामायिक करे। सामायिकमें कुत्सित ध्यान और चिंतना छोड देनी चाहिये। जिनदेव, जिनवचन, जिन धर्म, जिनालय और पंच परमेष्टीके गुणोंका चिन्तवन, ध्यान, वंदना, स्तुति आदि त्रिकाल करना सो सामायिक है। समतासे राग द्वेष और उसके उत्पादक कारणोंका परित्याग करना सो सामायिक प्रतिमा है।

उत्तम मज्झ जहण्णं तिविहं पोसहविहाण मुद्दिट्ठं।
सगसत्तीएमासम्मि चउसु पव्वेसु इकायव्वं ॥

अर्थः—प्रोषधोपवास उत्तम मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन प्रकार हैं। उत्तम वह है जिसमें धारणा और पारणाके दिवस एकाशन पूर्वक उपवास करना, इसमें समस्त प्रकारके आरंभका त्याग करदेना चाहिये। निर्भय होकर निःशल्यता-पूर्वक पंच परमेष्ठीका ध्यान धरना चाहिये। मध्यम समस्त हिंसक आरंभको छोड़कर उपवास करनेसे होता है। जघन्य आम्ल अथवा एक अन्नको ग्रहण कर स्वाध्यायादिसे शांति-लाभ करता हुआ धर्मसेवन करनेसे होता है। पर्वके दिन प्रोषधोपवास करना चौथी प्रतिमा है।

सज्जी जदि हरियं तयपत्तपवालकंदफलवीयं।
अप्फासुगं च सलिलं सचित्तणिव्वित्तिमं ठाणं ॥

अर्थः—सचित्त वस्तु-हरित अंकुरपत्र, फल, कंद बीज और अप्रासुक जलादि सेवन नहीं करना सो पंचम प्रतिमा है।

मण वयण काय कदकारिदाणुमोदेहिं मेहुणं णवधा।
दिवसम्मि जो विवज्जदि गुणम्मि सो सावउ छेदो॥

अर्थः—मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे दिवसमें मैथुन सेवन नहीं करना सो छट्ठी प्रतिमा है।

पुव्वुत्तण विवहाणंपि मेऊणं सव्वदा विवज्जंतो।
इत्थिकहादि णियत्ती सत्तमया गुण वंभचारी सो॥

अर्थः—नव प्रकारसे स्त्री मात्रका त्याग तथा स्त्री कथा-दिका भी त्याग करना सो सातमी प्रतिमा है।

जं किं पि गिहारंभ व उथोवं वा सया विवज्जेदि।
आरंभ णिवित्तमदिं सो अट्ठम सावओ भणिओ॥

अर्थः—थोडा बहुत गृह संबंधी आरंभ छोडना सो आठमी प्रतिमा है।

मुत्रूण वत्थमेत्तं परिग्गह दडिऊण अवसेसं।
तथवि मुच्छण करेदि जाणिसो सावओ णवमो॥

अर्थः—वस्त्र मात्रको रखकर अवशेष परिग्रहका त्याग करना सो नवमी प्रतिमा है।

पुठोत्रा पुच्छे वा णिय गेहि परेहि सगिहकज्जे।
अणुमणणं जोणकरेदि वियाण सो सावओ दसमो॥

अर्थः—जो अपने अथवा अन्यके गृहकार्य संबंधी आरं-भमें अनुमति नहीं देता है, सो दशमी प्रतिमा धारक है।

एयारसम्मि ठाणे उक्किठो सावओ हवई दुविहो।
वत्थेक धरो पढमो कोवाण परिग्गहो विदिओ॥

अर्थः—उत्कृष्ट श्रावकके क्षुल्लक ऐलक ऐसे दो भेद हैं। प्रथम वस्त्रका रखनेवाला और दूसरा कौपीन मात्र रखनेवाला है।

तव वय नियमावासय लोचं कारेदि पिच्छगिण्हेदि।
अणुवेहा धम्मझाण करपत्ते एक ठाणम्मि ॥

अर्थः—उभय प्रकारके उत्कृष्ट श्रावक तप, व्रत, नियम, संयम, ध्यान, प्रथमकी समस्त प्रतिमाऐं सदाचार नियमसे पालन करता है। निर्दोष आहार एक समय पाणिपात्रमें लेता है सो कषायोंका विजयी एकादश प्रतिमा धारक है।

इस प्रकार संक्षेपसे पाक्षिक नैष्ठिक श्रावकका सदाचार है। इस सदाचारके पालन करनेसे उभय लोककी सिद्धि होती है। इतना ही नहीं किन्तु यह सदाचार नीतिमय होनेसे राजभयादि रहित पूर्ण सुखका सत्य मार्ग है।

इच्छमे जो कोइ दिवसिओ अइयारो अणायारो तस्स भंते पडिक्कमामि पडिक्कमं तस्स मे सम्मतमरणं समाहिमरणं पडित्तमरण वीरियमरणं दुक्खक्खउ कम्मखउ वोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अर्थः—इस प्रकार उक्त व्रतोंमें मुझसे दिवससंबंधी अती-

चार लगे हों उसका प्रतिक्रमण करता हूं इससे यह भी चाहता हूं कि समाधिमरण आदि उत्तम गुण प्राप्त हों।

दंसण वय सामाइय पोसह सचित्त रायभत्तेय।
बंभारंभ परिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देस विरदोय॥

एयासु यथा कहिद पडिमासु पमादाइ कया-इ चार सोहणट्ठं छेदोवट्ठाणं अरहंत सिद्ध आयरीय उवज्झाय सव्वसाहु सक्खियं सम्मत पुव्वगं सुव्वदं दिट्ठव्वदं समारोहियं मे भवदु मे भवदु मे भवदु।

अथ देवसिय पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहिणिमित्तं पुव्वायरियकमेण पडिक्कमण भत्ति कायोत्सग्गं करोमि॥

(णमोकार मंत्रकी जाप्य ९ वार)

इस प्रकार कायोत्सर्ग (णमोकार मंत्रकी जाप्य ९ वार) देकर पुनः 'णमो अरहंताणं' यहांसे प्रारंभकर 'यावंति जिन चैत्यानि' इस श्लोक पर्यन्त मूल पाठ पढ़कर पुनः कायोत्सर्ग धारण करे।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरीयाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

णमोजिणाणं ३ णमो णिसीहीए ३ णमोत्थुए मम मंगलं अरहंत सिद्ध बुद्ध णिरय णिम्मल सममण शुभमण सुसमत्थ समजोगसमभाव सल्लघट्टाणं २ णिब्भय णिराय णिद्दोस णिम्मोह णिम्मम णिस्संग णिसल्लमाणमायमोसमूरणे तवपहावण गुणरयण सीलसायर अणंत अप्पमेय महदि महावीर वड्ढमाण बुद्धिरिसिवेदि ।

णमो थुदे ३ मम मंगल अरहंताय सिद्धाय बुद्धाय जिणाय केवलिणो ओहिणाणिणो मणपज्जयणाणिणो चउदसपुव्वगामिणो सुदसमिदिमिद्धाय तवोय बारस विहो तवसो गुणाय गुणवंतोय महारिसि तित्थं तित्थंकराय पवयणं पवयणीयं णाणं णाणीयं दंसणं दंसणीयं सजमो संजदाय विणओ विणीयदय बंभचेरवासो बंभचारीय गुत्तीओचेव गुत्तिमंतोय मुत्तियोचेव मुत्तिमंतोय समिदी उचेव समिदियं तोय सुसमय परसमय परसमय विदूखंति खवगाय खंतिमंतोय

खीणमोहाय खीणवंतोय बोहिय बुद्धाय बुद्धि-मतोय चेयरुक्खाय चेइयाणि उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमंसामि सिद्धणिसीही याउ अट्ठा-वय पव्वदे सम्मदे णिज्जंये चंपाएं पावाए मज्झिमाए इत्थिवालियस्सहाये जाउ अणाउ काउदि सिद्ध णिसिहीयाउ जीवलोयम्मि इसिपव्व भरतलगयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्क मुक्काणं णीरयाणं णिम्मलाणं गुरु आइरिय उवज्झायाणं पुव्वतित्थेर कुलयराणं चाउवणेय सवण सघोय भरहेरावएसु दससु पंचसु महाविदेहेसु जंलोए संति साहुओ संजदा तवसी एदे मम मगल पदित्तं एदेहं मंगलं करेमि मावदो विशुद्धो सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धेकाउणं अजलि मच्छयमि पडिलेहिय अठक्-त्तरिउ तिविहं तियरयण सुद्धोत्थ ॥

अर्थः—हे जिनराज! आपके लिये नमस्कार है। स्तुत्य—वंदनीय, मंगलमय अरहंत भगवान मेरा मंगल (कल्याण) कीजिये।

हे महावीर! आपका स्तवन करता हूं। आप राग, दोष, मोह, ममत्व परिग्रह, शल्य (माया मिथ्या निदान)

और कषाय रहित हों। आपने साम्यभाव धारणकर समस्त कर्मोंका नाश किया है। शुभ भावोंको धारणकर निर्भय हो-गये हों। आपके तप ही प्रधान योग है, इस लिये आप गुण-रत्न हों, शीलके सागर हों, अप्रमेय हों, महान् हों, मुनि महर्षि और ज्ञानीजनोंसे पूज्य लोक-शिरोमणि सर्वज्ञ हों, कर्ममल रहित सिद्ध हों (मविष्यमें), शुद्ध हों, अनंत-गुणोंके पुंज हों, प्रभो! मुझे मंगल करो।

नोट—मूल प्रतिक्रमण पाठमें अष्ट मूलगुणोंका प्रतिक्रमण नहीं लिखा है। पाक्षिक श्रावकके मूलगुणमें अतीचार अनाचार अवश्य ही लगते हैं। अतएव पाक्षिकोंको नीचे लिखा पाठ प्रतिक्रमण करते समय अवश्य ही पढना चाहिये।

(१) हे भगवान्! मैंने मूलगुणोंको पालन करते समय मद्य (दारु)के त्यागमें अचार (अथाणा), चलित दही, छाछ, कांजी और आसवों (अर्क)का सेवन किया, कराया और सेवन करनेको अनुमति दी इस-सम्बंधी अतीचार अनाचार जो मुझसे दिवस संबंधी लगें हों उनका मैं प्रतिक्रमण करता हूं।

(२) हे भगवान्! मैंने मूलगुणोंका दूसरा भेद मांस त्याग व्रतमें चाममें रखा हुआ घी, तेल, पानी सेवन किया हो, सडा हुआ अन्न, चलित आटा, आदि पदार्थ, हींग (चाममें रखकर आती है।) तथा मांस मिश्रित औषधि सेवन की हो उस संबंधी अतीचार अनाचार मुझसे हुआ हो उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूं।

(३) हे भगवान! मैंने मूलगुणोंका तीसरा भेद मधु त्यागमें हरे (गीले) फूल (ऐसे फूल जिनमें मिठासके लिये बहुतसे त्रस जीव आकर निवास करते हों) आदि सेवन किये हों इत्यादि, तत्संबंधी मैं प्रतिक्रमण करता हू।

केवली, अरहंत, तीर्थंकर, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, श्रुतकेवली, शास्त्रज्ञानी, पवित्र तप और तपके धारक यतीश्वर, गुणी (ऋद्धिधारी मुनीश्वरको गुणी कहते हैं), गुणवान्, महर्षि, सिद्धान्त, सिद्धान्तज्ञानी, ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि संयमी,

---

(४) हे भगवान्! पंचोदुंबर त्यागमें अज्ञात फल, चलित फल, विना शोधे देखे कच्ची फली, तथा क्षुद्रफल (जिसमें हिंसा अधिक हो और फल अल्प हो जैसे-बैर) आदि सेवन किये हों तत्सम्बंधी अतीचार इत्यादिका मैं प्रतिक्रमण करता हूं।

(५) हे भगवान्! मैंने मूलगुणका पांचवां रात्रिभोजन नामक गुणके पालन करनेमें दो घड़ी (सुर्योदयाद्र) के अनंतर पदार्थोंका सेवन किया हो, अथवा औषधि निमित्त बनाकर रसादि सेवन किये हों, तत्संबंधी अतीचार मुझसे लगा हो उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूं।

(६) हे भगवान्! मैंने मूलगुणका छट्टा भेद जल गालन नामक गुणके पालन करनेमें दो मुहूर्त व्यतीत हो जानेपर भी विना छने (गले) पानीका उपयोग किया, जीवाणी (विनछन) जहांसे पानी लाया गया वहां पर नहीं पहुंचाया, मलिन और सछिद्र वस्त्रसे जल छाना, जीवाणी (विनछन) का विचार नहीं किया तत्संबंधी अतीचार इत्यादि, उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूं।

(७) हे भगवान्! मैंने मूलगुणका सातवां भेद जिनदर्शनके पालन करनेमें प्रमाद किया अविनयसे कार्य किया, मन, वचन और कायकी शुद्धि नहीं रखी इत्यादि अतीचार अनाचार मुझसे लगे हों उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूं।

(८) हे भगवान्! मैंने मूलगुणका आठवां भेद जीवदयाके पालन करनेमें प्रमाद और अज्ञान रखा, विना प्रयोजन जीवोंको सताया, अंगोपांग छेदे इत्यादि अतीचार मुझसे लगे हो, तत्संबंधी मैं प्रतिक्रमण करता हूं।

विनय करने योग्य, ब्रह्मचारी, गुप्तिधारक, समिति पालक, स्वसमयके ज्ञाता, क्षीणमोह ज्ञानी, ऋषि, महर्षि और ऋद्धि-धारक मुनीश्वर मेरा कल्याण करो।

तीन लोकमें जितनी जिन प्रतिमा, जिन चैत्यालय, सिद्धक्षेत्र और तीर्थक्षेत्र हैं उनको मैं नमस्कार करता हूं। अष्टापद, संमेदाचल, गिरनार, चपापुर, पावापुर, हस्तनापुर आदि तीर्थोंसे और विदेह क्षेत्र तथा समस्त कर्मभूमिमे जितने जीव कर्ममलरहित सिद्ध, बुद्ध और निर्मल होगये हैं वे चारों प्रकारके संघको मंगल करो, पवित्र करो, शांति करो। विशुद्ध भावनासे मैं अष्टांग (हाथ पैर मस्तक और छाती) नमस्कार करता हूं। मेरे कर्मोंका नाश करो।

इस प्रकार सात व्यसनोंमें जो जो दोष लगाये हों उनका भी विचार कर आलोचना पूर्वक प्रतिक्रमण करे।

पडिक्कमामि भंते दंसण पडिमाए संकाए कंखाए विदिगिंच्छाए परपासंडपसंसणाए पसंथूए जो मए देवसिओ अइचारो अणाचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

अर्थः—हे भगवान! कृत कर्मोंके पश्चात्ताप पूर्वक प्रतिक्रमण करता हूं। दर्शन प्रतिमाके पालन करनेमें जिनमार्गमें शंका

की हो, शुभाचरण पालनकर संसार-सुखकी आकांक्षा (निदान) की हो, धर्मात्माओंके मलिन शरीरको देखकर ग्लानि की हो, मिथ्या मार्ग और उसके सेवनेवालोंकी प्रशंसा की हो, इत्यादि जो मैंने दिवस संबंधी अतीचार मन वचन कायसे किये हों, कराये हों, अन्यके करनेमें अनुमति प्रदान की हो तत्संबंधी समस्त कार्योंकी आलोचना करता हूं, पश्चात्ताप करता हूं और वे कर्म निरर्थक हों, ऐसी इच्छा करता हूं।

पडिक्कमामि भंते वद पडिमाए पढमे थूलयडे हिंसाविरदिवदे वहेण वा बंधेण वा, छएण वा अइभारारोपणेण वा, अणपाणणिरोहेण वा जो मए देवसिउ अइचारो अणाचारो मणसा, वचिया, काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समुणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

अर्थः—हे भगवान! मैं अपने कृतकर्मोंकी आलोचनापूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। दूसरी व्रत प्रतिमाके अंतर्गत प्रथम अहिंसाणुव्रतके पालन करनेमें जीवोंको बांधे हों, मारे हों, अंगोपांग छेदे हों, शक्तिसे अधिक बोझ लादा हो और अन्न पानका निरोध किया हो, इत्यादि अनेक अतीचार अनाचार दिवस संबंधी मुझसे मन, वचन,

काय और कृत, कारित अनुमोदनसे लगे हों वे निरर्थक हों, ऐसी मेरी भावना है।

पडिक्कमामि भंते वद पडिमाए विदिये थूलयडे असच्चविरदिवदे मिच्छोपदेसेण वा रहे अब्भक्खाणेण वा कूडलेह करणेण वा णासावहारेण वा सायारमंतभेएण वा जो मए देवसिउ अइचारो अणाचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिंदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

अर्थः—हे भगवान्! अपने कृत कर्मोंकी आलोचनापूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। दूसरी प्रतिमाके अंतर्गत स्थूल सत्यव्रतमें मिथ्या उपदेश देनेसे, एकांतमें कही हुई बातको प्रकट कर देनेसे, झूठा लेख लिखनेसे, धरोहर हरण करनेसे, किसीके इंगित चेष्टासे अभिप्राय समझकर भेद प्रकट कर देनेसे इत्यादि अनेक प्रकार अतीचार अनाचार मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे हुए हों वे निरर्थक हों।

पडिक्कमामि भंते वद पडिमाए तिदिये थूलयडे थेणविरदिवदे थेणपओगेण वा, थेणहरियादाणेण वा, विरुद्धरज्जाइक्कमणेण वा, हिणाहियम्माणुमा-

णेण वा पडिरूवय ववहारेण वा जो मए देवसिउ अइचारो अणाचारो मणसा वचिया कायेण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिंदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थः—हे भगवन्! मैं अपने कृत कर्मोंकी आलोचना-पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। दूसरी प्रतिमाके अंतर्गत स्थूल अचौर्याणुव्रतके पालन करनेमें दिवस संबन्धी मन, वचन, काय, और कृत, कारित, अनुमोदनासे चोरीका प्रयोग बतलाया हो, चोरसे अपहरण की हुई द्रव्य ग्रहण की हो, राज्यके विरुद्ध कार्य किया हो, तोलनेके बांट कमती बढ़ती रखे हों, और अधिक कीमती वस्तुमें अल्प कीमती मिलाकर बदले दी हों, इस प्रकार अनेक दोष किये हों वे सब निरर्थक हों।

पडिक्कमामि भंते वद पडिमाए चउथे थूलयडे अबंभविरदिवदे परविवाहकरणेण वा इत्तरियागमणेण वा परिग्गहिदा परिग्गहिदागमणेण वा अणंगक्रीडणेण वा कामत्तिव्वाभिणिवेसेण वा जो मए देवसिउ अइचारो अणाचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो कीरंतो वा

समणुमणिंदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थः—हे भगवान! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हू। दूसरी व्रत प्रतिमाके अंतर्गत स्थूल ब्रह्मचर्याणुव्रतके पालन करनेमें दिवस संबंधी मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे अन्यके पुत्र पुत्रियोंका विवाह किया हो, व्यभिचारिणी स्त्रीके घरके साथ व्यवहार-आना जाना आदि रखा हो, वेश्या कुमारिका और विधवा इत्यादिक परिग्रहीत और अपरिग्रहीत स्त्रियोंके साथ कामवासनासे व्यवहार किया हो, काम सेवनके अंग सिवाय अन्य अंगसे काम चेष्टा की हो, कामके तीव्र विकारसे बिभत्स बिचारा हो इत्यादि अनेक प्रकारके दोष दिवस संबंधी मुझसे बने हों, दूसरेसे कराये हों, अन्यके करनेमें हर्ष माना हो सो सब मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते वद पडिमाए पंचमे थूलयडे परिग्गहपरिमाणवदे खेतवत्थूण परिमाणाइक्कमणेण वा धणधण्णाणं परिमाणइक्कमणेण वा हिरण्णसु-वण्णाणं परिमाणाइक्कमणेण वा दासीदासाणं परि-माणाइक्कमणेण कुप्यपरिमाणाइक्कमणेण वा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो

वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थः—हे भगवन् ! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। दूसरी प्रतिमाके अंतर्गत स्थूल परिग्रहत्यागव्रतमें जमीन, घर, गाय, बैल प्रभृति धन और गेहूं आदि धान्य, सुवर्ण, चांदी, दासी, दास, वस्त्र, और भांड इत्यादि समस्त परिग्रहके परिमाणका मैंने मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे उल्लंघन किया हो, अन्यसे कराया हों, अन्यके करनेमें अनुमति दी हो तो, उस संबंधी समस्त दोष मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते वदपडिमाए पढमे गुणव्वदे उड्ढवईक्कमणेण वा अहोवईक्कमणेण वा, तिरियवईक्कमणे वा खेत्तवड्ढिएण वा सदि अंतराधाणेण वा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा बचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थः—हे भगवन् ! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। मैंने व्रत प्रतिमाके अंतर्गत गुणव्रतका प्रथम भेद दिग्व्रत नामक व्रतके पालन करनेमें ऊर्ध्व दिशाका अतिक्रमण किया हो,

नीचेकी दिशाका अतिक्रमण किया हो, तिर्यग्दिशाका अति-क्रमण किया हो, क्षेत्रकी मर्यादा बढ़ाई हो, अथवा मर्यादाका विस्मरण किया हो, इत्यादि अनेक प्रकारके दोष दिवस संबंधी मैंने किये हों, अन्यसे कराये हों, और अन्यके करनेमें अनुमति दी हो तो वे सब मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते वद पडिमाए विदिए गुणव्वदे आणयाणेण वा विणिजोगेण वा सद्दाणुवाएण वा रूवाणुवाएण वा पुग्गलक्खेवेण वा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

अर्थः—हे भगवन्! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चाताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। दूसरी प्रतिमाके अंतर्गत गुणव्रतका दूसरा भेद देशव्रतके पालन करनेमें, मर्यादा किये हुए क्षेत्रके बाहरसे वस्तु मगाई हो, मर्यादाके बाहर वस्तु भेजी हो, कंकर पत्थर फेंककर अन्य मनुष्यसे मर्यादाके बाहरका कार्य किया हो, शब्द आदिकी समस्या दिखलाकर कार्य किया हो, अपना रूप दिखलाकर मर्यादा बाहरका कार्य सिद्ध किया हो, इत्यादि अनेक दोष मन, वचन, कायसे दिवसमें मैंने किये हों,

अन्यसे कराये हों अथवा अन्यके करनेमें अनुमति प्रदान की हो तो वे सब मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते वद पडिमाए तिदिए गुणव्वदे कंदप्पेण वा कुक्कुचिएण मोक्खरिएण वा असमक्खियाहिकरणेण वा भोगोपभोगाणत्थकेण जो मए देवसिउ अइचारो अणाचारो मणसा, वचिया, काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिंदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थः—हे भगवन् ! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचनापूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। दूसरी व्रत प्रतिमाके अंतर्गत गुणव्रतका तीसरा भेद अनर्थदण्ड वरति व्रतमें रागके उदयसे स्मित हास्यसे थट्टा की हो, कुत्सित भाषण किया हो, शरीरकी खोटी चेष्टा की हो, विना प्रयोजन बकवाद किया हो, व्यर्थके कार्य किये हों (प्रयोजन विना हिंसाजनक व्यापार किया हो), भोगोपभोगकी सामग्री अपेक्षासे बहुत ही अधिक निष्काम संग्रह की हो, इत्यादि अनेक प्रकारके दोष मन वचन कायसे दिवसमें मैंने किये हों, अन्यसे कराये हों अथवा किसीके करनेपर हर्ष प्रदर्शित किया हो तो वे सब दोष मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते वदपडिमाए पढमे सिक्खावदे

फासिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा रसणिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा घाणिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा चक्खिंदिय भोगपरिमाणा इक्कमणेण वा सवणिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिंदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थः—हे भगवन् ! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। व्रत प्रतिमाके अंतर्गत प्रथम शिक्षाव्रत भोगपरिमाण व्रतमें स्पर्श इंद्रिय, रसना इंद्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, श्रोत्रेन्द्रिय इस प्रकार पांच इन्द्रियोंके विषयसंबंधी भोग पदार्थोंके परिमाणका अतिक्रमण मन वचन काय द्वारा दिवसमें स्वयं किया हो, अन्यसे कराया हो, किसीके करनेमें भला माना हो इत्यादि दोष मैंने किये हों तो वे सब मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते वदपडिमाए विदियसिक्खावदे फासिंदिय परिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा रसणिंदिय परिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा घाणिंदिय परिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा चक्खिंदिय

परिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा सवणिंदिय परि-भोगपरिमाणाइक्कमणेण जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया कायेण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिंदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थः—हे भगवान ! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक प्रतिक्रमण करता हूं। व्रत प्रतिमाके अंतर्गत शिक्षाव्रतका तीसरा भेद उपभोगपरिमाण व्रतमें स्पर्शेन्द्रिय उपभोग परिमाण, रसनेन्द्रिय उपभोग परिमाण, घ्राणेन्द्रिय उपभोग परिमाण, चक्षुरिन्द्रिय उपभोग परिमाण और श्रोत्रेन्द्रिय उपभोग परिणाम, इस प्रकार पांचोंइन्द्रियोंके उपभोग-संबंधी पदार्थोंका आतिक्रमण मन वच कायसे किया हो, कराया हो. करनेको भला माना हो इत्यादि अनेक दोष दिवसमें मुझसे बने हों तो वे सब मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते वदपडिमाए तिदिए सिक्खा-वदे सचित्तणिक्खेवेण वा सचित्तपिहाणेण वा परउवएसेण वा कालाइक्कमणेण वा मच्छरिएण वा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणु-मणिंदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

अर्थः—हे भगवान्! मैं अपने लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। व्रत प्रतिमाके अंतर्गत शिक्षाव्रतका तीसरा भेद अतिथिसंविभाग नामक व्रतमें सचित वस्तुमें प्रासुक अचित्त पदार्थको रखा हो, सचित वस्तुसे ढका हो, अन्य किसीके प्रतिपादित करनेसे दिया अथवा अन्यका द्रव्य अपना द्रव्य कहकर दिया हों, दान देनेमें समयका विच्छेद किया हो, दान देनेमें अन्य भव्यात्माओंके साथ द्वेष किया हो इत्यादि अनेक प्रकारके दोष मन, वचन, कायसे दिवसमें मैंने स्वयं किये हों, अन्यसे कराये हों, किसीको करनेमें संमति प्रदान की हों तो वे सब दोष निरर्थक हों।

पडिक्कमामि भंते वदपडिमाए चउत्थे सिक्खा-वदे जीविदासंसणेण वा मरणासंसणेण वा मित्ता-णुराएण वा सुहाणुबंधेण वा णिदाणेण वा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

अर्थः—हे भगवन! मैं अपने व्रतमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। व्रत प्रतिमाके अंतर्गत शिक्षाव्रतका चोथा भेद समाधिमरण

व्रत पालन करनेमें जीवित रहनेकी आशा रखना, मरणका भय करना, हाय! मैं मर जाऊंगा क्या? ऐसे परिणामोंसे संक्लेशित होना अथवा शीघ्रतासे मरण होनेकी इच्छा रखना। इष्ट मित्रजनोंसे प्रेम करना, पूर्वमें भोगे हुए भोगोंका स्मरण करना, और व्रतादिक पालन कर सांसारिक सुखकी इच्छा करना इत्यादिक अनेक दोष दिवसमें मैंने मन वचन कायसे किये हों, अन्यसे कराये हों, किसीके करनेमें अनुमति प्रदान की हों, तो वे सब दोष निरर्थक हों।

पडिक्कमामि भंते सामाइयपडिमाए मणदुप्पणिधाणेण वा वाकदुप्पणिधाणेण वा, कायदुप्पणिधाणेण वा अणादरेण वा सदिअणुवठाणेण वा जो मए देवसिउ अइचारो, मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

अर्थः—हे भगवान्! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करनेका इच्छुक हूं। तीसरी सामायिक प्रतिमाके करनेमें मनकी स्थिरता न रखी, वचनकी स्थिरता न रखी, शरीरकी स्थिरता नहीं रखी, सामायिक करनेमें अनादर प्रकट किया अथवा सामायिकके पाठका विस्मरण किया इत्यादि अनेक प्रकारके

दोष दिवसमें मैंने मन वचन कायसे किये हों, अन्यसे कराये हों, किसी अन्यके करनेमें अनुमति प्रदान की हों तो वे सब दोष मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते पोसहपडिमाए अप्पडिवेक्खियापमज्जियासग्गेण वा अप्पडिवेक्खियापमज्जिदाणेण वा अप्पडिवेक्खियापमज्जियासंघारोवक्कमणेण वा आवस्सयाणदरेण वा सदिअणुव्वठाणेण वा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

अर्थः—हे भगवान्! अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। चौथी पोषधोपवास नामक प्रतिमाके पालन करनेमें दृष्टिसे जीवजंतुओंको न देखकर और प्रमादसे जीवजंतुओंका शोधन किये बिना मल मूत्रका क्षेपण किया हों अथवा पूजोपकरण आदि वस्तुओंको बिना देखे बिना शोधे ऐसे ही जीव जंतुवाली जमीनमें रखी हों। बिना देखे और बिना सोधे उपकरण पुस्तक आदि संयमोपयोगी वस्तुओंको ग्रहण की हों, बिना शोधे बिस्तर आदि बिछाये हों, षट् आवश्यक पालन करनेमें

१ गृहस्थोंके लिये षट् आवश्यक दोनों प्रकारके पालन करने

अनादर किया हो, अथवा सामायिक, पूजन, स्तवन आदिका पाठ विस्मरण किया हो इत्यादि अनेक दोष दिवसमें मैंने मन वचन कायसे स्वयं किये हों, अन्यसे कराये हों, व अन्य किसीके करनेमें अनुमति प्रदान की हों तो वे सब दोष मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते सचित्तविरदि पडिमाए पुढविकाइआ जीवा संखेज्जासंखेज्जा आउकाइआ जीवा संखेज्जासंखेज्जा तेउकाइआ जीवा संखेज्जासंखेज्जा वाउ काइआ जीवा संखेज्जा संखेज्जा वणप्फदिकाइआ जीवा अणंताणंता हरिया विया अंकुरा छिण्णाभिण्णा एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

अर्थः—हे भगवान्! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचनापूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करनेका इच्छुक हूं। पांचवी सचित्तत्याग प्रतिमाके पालन करनेमें जल-

---

चाहिये। समता, वंदना, स्तुति, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, और कायोत्सर्ग इनको आवश्यक कहते हैं। अथवा देवपूजा, गुरुकी उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप, और दान ये भी छह आवश्यक हैं। दोनों प्रकारके आवश्यकोंका अभिप्राय परिणामको सरल और पवित्र रखनेका है इसलिये आवश्यक कर्ममें अनादर करना व्रतमें शिथिलता है।

कायके संख्यात अथवा असंख्यात जीव, तेजकायके संख्यात असंख्यात जीव, वाउकायके संख्यात असंख्यातजीव, पृथ्वीकायके संख्यात असंख्यातजीव, और वनस्पतिकायके अनंतानंत जीव, हरितकायके जीव, हरित अंकुर, बीज कंदमूल आदिके जीव, और साधारण वनस्पतिके जीवोंका छेदन किया हो, भेदन किया हो, प्राणोंका घात किया हो, पांव आदिसे कुचल दिये हों, त्रास दिया हो, पीडा करी हो, और उनकी विराधना की हो इत्यादि अनेक दोष मैंने मन वचन कायसे स्वयं किये हों, अन्यसे कराये हों, किसी अन्यके करनेमें सहमत हुआ हों तो वे सब दोष मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते राइभत्तपडिमाए णव विहबंभचरियस्स दिवा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिंदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

अर्थः—हे भगवन्! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करनेकी इच्छा करता हूं। षष्ठी दिवा-मैथुन त्याग नामक प्रतिमाके पालन करनेमें नव प्रकार-स्त्रियोंके विषयकी अभिलाषा, लिंग विकार, घृत दुग्धादि पुष्टरस त्याग, स्त्री-पशु-नपुंसक-विट, और सप्त विषयोंके लोलुप मनुष्योंके आश्रित वस्तिका त्याग, स्त्रियोंके मनोहर अंग-निरीक्षण त्याग, स्त्रियोंकी बुरी

वासना आदर सत्कारका त्याग, अपनी पूजा प्रतिष्ठाके श्रवणका त्याग, अंग शृंगारका त्याग, संगीत नृत्य वादित्र आदिका श्रवण किया हो इत्यादि अनेक दोष दिवसमें मैंने मन वचन कायसे स्वयं किये हों, अन्यसे कराये हों, किसी अन्यके करनेमें भला माना हो तो वे सब दोष मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते इत्थिकहायत्तणेण वा इत्थि-मणोहरांग निरिक्खिणेण वा पुव्वरयाणुस्मरणेण वा मुक्कोपणरसा सेवणेण वा सरीरमंडणेण वा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिंदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थः—हे भगवान्! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमाके पालन करनेमें स्त्रियोंकी मनोहर कामोत्पादक कथा की हो, काम दृष्टिसे स्त्रियोंके गुह्य मनोहर

---

१ इस प्रतिमाका नाम रात्रिभुक्त त्याग भी है इसलिये चारों प्रकारके आहारमें मोह किया हो, पूर्व भोगे हुए रसोंका स्मरण किया हो, निदान किया हो, और रसोंको न भोगते हुए भी मैं रसभोग रहा हूं ऐसा स्मरण किया हो इत्यादि दोष मैंने स्वयं किये हों, अन्यसे कराये हों, किसीके करनेपर सम्मति दी हो तो वे सब मिथ्या हों।

अंगोंका निरीक्षण किया हों, पूर्वकालमें भोगे हुए विषयोंका स्मरण कर मनको विकारित किया हों, कामोत्पादक पुष्ट रसोंका सेवन किया हों, स्त्रियोंको आसक्त करनेवाला शरीरका शृंगार किया हो इत्यादि अनेक प्रकारके दोष मैंने दिवसमें मन, वचन, कायसे किये हों, अन्यसे कराये हों, किसी अन्यके करनेमें सहमति प्रदान की हो वे सब दोष मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते आरंभविरदि पडिमाए कसायवसंगएण जो मए देवसिउ आरंभो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिंदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

अर्थः—हे भगवान ! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। आठवीं आरंभत्याग प्रतिमाके पालन करनेमें क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह आदि कषायोंके वश पापकर्मोंका आरंभ दिवसमें मैंने मन, वचन, कायसे किया हो, अन्यसे कराया हो, अन्य किसीके करनेमें अनुमति प्रदान की हो तो वे मेरे सब दोष मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते परिग्गहविरदिपडिमाए वत्थमेत्त परिग्गहादो अवरम्मि परिग्गहे मुच्छाप-

रिणामो जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिंदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थः—हे भगवान! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। नवमीं परिग्रह त्याग प्रतिमाके पालन करनेमें वस्त्र मात्र परिग्रह सिवाय अन्य परिग्रहमें मूर्च्छा की हो तो उस संबंधी दिवसमें मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे किये हुए दोषोंको मिथ्या चाहता हूं।

पडिक्कमामि भंते अणुमणविरदिपडिमाए जं किंपि अणुमणणं पुट्ठापुट्ठेण कदं वा कारिदं वा कीरंतो वा समणुमणिंदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थः—हे भगवान! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक प्रतिक्रमण करता हूं। दशवीं अनुमतिविरति प्रतिमाके पालन करनेमें अन्यके पूछनेपर अथवा बिना पूछनेपर भी जो कुछ अनुमति दी हो तत्संबंधी मन, वचन, काय और कृत, कारित अनुमोदनासे दिवसमें किये हुए समस्त दोष मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते उद्दिट्ठविरदिपडिमाए उद्दि-

ट्ठदोसबहुलं आहारियं वा आहारावियं वा आहारिज्जंतं समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थः—हे भगवान! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चाताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमाके पालन करनेमें उद्दिष्ट दोषसे दूषित आहार स्वयं सेवन किया हो, अन्यको उद्दिष्ट दोषसहित आहार कराया हो, उद्दिष्ट दोष दूषित आहारके करनेमें संमति प्रदान की हो, तत् संबंधी जो दोष मन वचन कायसे मुझसे हुए हों वे सब मिथ्या हों।

निर्ग्रन्थ पदकी वांछा।

इच्छामि भंते इमं णिग्गंथं पावयणं अणुत्तरं केवलियं णेग्गइयं सामाइयं संसुद्धं सल्लघत्ताणं सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं मोत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं सव्वदुःखपरिहाणिमग्गं सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं अविहत्तमविसंति पव्वयणमुत्तमं तं सद्दहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि त फासेमि इदो उत्तरं अण्णं णत्थि ण भूदं ण भवं भविस्सदि णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तेण वा इदो जीवा सिज्झ-

झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयति सव्वदुःखाणमतं करंति परिवियाणंति समणोमि संजदोमि उवरदोमि उवसंतोमि उवधिणि पडिमाणमायामोसमूरण मिच्छणाण मिच्छदंसण मिच्छरितं च पडिविरदोमि सम्मणणाण सम्मदंसण समच्चरित्तं च रोचेमि जं जिणवरेहिं पणत्तो इत्थ मे जो कोई देवसिउ राईउ अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थः—हे भगवान! मैं निर्गन्थ पदकी इच्छा करता हूं। जबतक मेरा संसारसे संबंध है तब तक भव भवमें यह त्रिजगत्-पूज्य और मंगललोकोत्तमशरणभूत निर्ग्रन्थपद वारवार मिलो।

ब्राह्य और आभ्यंतर समस्त परिग्रह रहित, अनुत्तर-(मोक्षमार्गका साक्षात चिह्न निर्ग्रन्थ लिंग सिवाय अन्य किसी भी लिंगसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती है इस लिये निर्ग्रन्थपद लोकोत्तर है) केवल ज्ञानका उत्पादक, रत्नत्रयका बीज, सर्व सावद्य रहित, परम उदासीनताका कारणभूत, आलोचना प्रायश्चित्त- निरतीचारता प्रतिक्रमण आदि गुणोंसे परम विशुद्ध, माया मिथ्या निदान इस प्रकार शल्यत्रय रहित, आत्म-सिद्धिका प्रधान मार्ग, उपशम क्षयोपशमादि श्रेणियोंका साक्षात मार्ग, परिग्रह क्रोध, मान, माया, लोभ काम और

व्यामोहादि समस्त विकार रहित होनेसे सर्वोत्तम निर्भय परमात्म प्राप्तिका प्रत्यक्ष मार्ग, त्यागका मार्ग, मोक्षमार्ग, उत्कृष्ट पदका मार्ग, संसारके परिभ्रमणसे रहित निर्दोष मार्ग, निर्वाणका मार्ग, सर्वदुःखोंके नाश करनेका मार्ग, उत्तम सदाचारके उत्पन्न करनेका मार्ग, अबाधित मार्ग, स्वतन्त्रताका मार्ग, निर्भयताका मार्ग, सर्व सुखोंका मार्ग और सर्वोत्कृष्ट मार्ग ऐसा निर्ग्रन्थ पद है।

मैं उक्त सर्वोत्कृष्ट निर्ग्रन्थपदको विशुद्ध भावोंसे श्रद्धान करता हूं, और संशयादि समस्त विकार रहित शुद्ध निश्चयसे चाहता हूं, विशुद्ध भावोंसे निश्चयरूप मानता हूं, विश्वास करता हूं, सहृदयसे स्वीकार करता हूं, अनन्य भावनासे प्रेम करता हूं, भक्तिमात्रसे स्पर्श करता हूं, पवित्र भावोंसे धारण करना चाहता हूं। इस निर्ग्रन्थपद सिवाय और दूसरा कोईभी उत्तम नहीं है। प्रथम कोई नहीं था, और न भविष्यमें कोई इसके समान होगा। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र, और सम्यक् आगमसे यह निर्ग्रंथपद सर्वोत्कृष्ट है। इसके धारण करनेसे ही जीव मोक्षमार्गमें प्राप्त होंगे, सिद्धपदको प्राप्त होंगे। समस्त कर्म रहित सर्वथा मुक्त होंगे अर्थात फिर कभी संसारके बंधनमें नहीं प्राप्त होंगे। इसी निर्ग्रंथपदसे निर्वाणपदको प्राप्त होंगे सर्व दुःखोंका नाश करेंगे। समस्त जीवादि तत्वोंके ज्ञाता होंगे। इसलिये मैं इस महान परमपूज्य निर्ग्रंथपदको धारण करता हूं। और उसकी प्राप्तिके लिये संयमका आराधन करता हूं। विषय

कषायोंसे उपशांत होता हू विरक्त होता हूं। परिग्रह क्रोध मान, माया, लोभ, मात्सर्य, द्वेष, राग, काम, भय, प्रपंच, और समस्त व्यामोहको छोडता हूं हिंसा, जूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहका त्याग करता हूं। मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन, मिथ्याचारित्रसे सर्वथा विरक्त होगया हूं। अब मैं सदाके लिये इनका परित्याग करता हूं। और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्रका श्रद्धान करता हू जो जिनेन्द्र भगवानने कहा है वह सत्य है, प्रमाणित है, निश्चय है, अबाधित है उसका मैं विश्वास करता हूं, श्रद्धान करता हूं। इस विषयमें मुझसे जो कुछ अतीचार हुए हों तो वे सब मिथ्या हों।

इच्छामि भंते वीरभत्ति काउस्सग्गं करेमि जो मए देवसिउ (राईउ चउमासिउ सांवच्छरिउ) अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो काईउ वाईउ माणसिउ दुच्चरिउ दुच्चारिउ दुब्भासिउ दुप्परिणामिउ दुस्समिणिउ णाणदंसणे चरित्ते सुत्ते समाइए एयारस एहं पडिमाणं विराहणाए अट्ठविहस्स कम्मस्स णिग्घादणाए अणहा उस्सासिदेण वा णिस्सासिदेण वा उम्मि-

१ देवसिउ ३६ गाढ़ १८ और चउमासिउ सांवच्छरिओ १०८ बार णमोकार मंत्र पढ़कर कायोत्सर्ग दें।

सिदेण वा णिमिसिदेण वा खासिदेण वा छिंकिदेण वा जंभाईदेण वा सुहुमेहिं अंगचलाचलेहिं दिट्ठिचलाचलेहिं एदेहिं सव्वेहिं समाहिं पत्तेहिं आयारेहिं जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जवासं करेमि तावकायं पावकम्म दुच्चरियं वोस्सरामि। दंसण वय सामाइय पोसह सचित्त राय भत्तीय। बंभारंभपरिग्गह अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदेदे।

एयासु यथा कहिद पडिमासु देवसिओ पमादाइकया इच्चार सोहणट्ठ छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं।

अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय सव्वसाहु सक्खियं सम्मत पुव्वगं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु मे भवदु मे भवदु। देवसिय पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहिणिमित्तं पुव्वापरियकम्मेण णिष्ठितकरण वीरभत्तिकायोस्सग्गं करेमि।

"णमो अरहंताणं" यहांसे प्रारंभकर "यावंति जिन-

१ जैसा प्रतिक्रमण किया हो वैसी ही णमोकार मंत्रकी जाप देनी चाहिए अर्थात् दिवस संबंधी प्रतिक्रमणकी ३६ बार णमोकारकी जाप देना उसी प्रकार उक्त लिखित नियमसे रात्रिकी १८ बार णमोकारकी जाप इत्यादि।

चैत्यानि" इस श्लोकपर्यन्त पढ़कर पुनः नववार णमोकार मंत्रकी जाप्य देना चाहिये।

अर्थः—हे भगवान्! मैं वीरप्रभुकी भक्ति करनेका इच्छुक हूं और इसके लिये मैं इस विनाशिक शरीरसे ममत्वभाव छोड़ता हूं। दिवसमें (रात्रिमें इत्यादि) आवश्यक क्रियाओंके करते हुए मैंने आलस किया हो, व्रतादिकोंको भंग किया हो, उनमें अतिचार लगाये हों, शिथिलता धारण की हो, मनमें ग्लानि उत्पन्न की हो, प्रकटरूप दंभवृत्तिसे व्रत पालन किये हों, लज्जाके लिये एकदम अपनेको छुपाकर आचरण किये हों, मन, वचन और शरीरकी दुष्टतासे व्रतोंका पालन किया हो, विभत्स उच्चारण कर कार्य किया हो, राग, द्वेष, अज्ञान और प्रमादसे विनय रहित उद्दण्डतासे व्रतोंका पालन किया हो, अपशब्द कहकर महत्वता बतलाई हो, कुत्सित परिणामोंसे कार्य किया हो, बुरे स्वप्नमें दोष उत्पादन किया हो, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र और जिनागमकी विराधना की हो, प्रतिमाओंकी विराधना की हो, इत्यादि अनेक दोष मुझसे बने हों, वे सब मिथ्या हों।

आठ कर्मोंको नाश करनेवाली क्रियाओंके प्रयत्न करनेमें (सामायिक-प्रतिक्रमण ध्यान-तप-पूजा और स्वाध्याय ये सब कर्मोंकेनाश करनेके कारण हैं) श्वासोच्छ्वाससे, नेत्रोंकी टंकारसे, खांसनेसे, छींकनेसे, जंभाई लेनेसे, सूक्ष्म अंगोंके हिलानेसे, आंगोपांगके फेंकनेसे, दृष्टिदोषसे इत्यादि समस्त क्रियाओंसे

सूत्रपाठ आदि क्रियाओंका विस्मरण किया हो, अविनय की हो, प्रमाद और अज्ञानसे अन्यथा प्ररूपणा की हो तो मैं इस प्रतिक्रमणके समय वीर भगवानकी भक्तिरूप कायोत्सर्ग धारण करता हूं। और तबतक पापकर्मोंको सर्वथा छोड़कर शरीरसे भी ममत्व त्याग करता हूं।

वीर प्रभुका स्तवन।

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्द्रव्याणि तेषां गुणान्।
पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वथा॥
जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते।
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः॥१॥

अर्थः—जो समस्त चराचर पदार्थोंको तथा समस्त द्रव्य और उनकी कालत्रयवर्ती समस्त पर्यायोंको एकसाथ प्रतिक्षण सदैव जानता है उसको सर्वज्ञ कहते हैं। वीर भगवान सर्वज्ञ हैं, वीतराग हैं और महान पूज्य जिनेश्वर हैं इसलिये वीर प्रभुको नमस्कार है

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिताः।
वीरेणाभिहितः स्वकर्मनिचयो वीराय भक्त्या नमः॥
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपो।
वीरे श्रीधृतिकीर्तिकांतिनिचयो हेवीर भद्रं त्वयि।२।

अर्थः—हे वीर प्रभो! आपकी समस्त इन्द्र पूजा करते हैं। विज्ञ गणधरादिक आपकी सेवा करते हैं। और आपने समस्त कर्मोको नष्ट कर दिया है इसलिये हे वीर! आपको नमस्कार है। धर्मतीर्थ आपसे इस कालिकालमें चल रहा है, आप घोर तपको धारण करनेवाले परमयोगी हो। आपमें श्री. कांति, कीर्ति आदि सर्व गुणोंका वास है अतएव आप कल्याणभागी हों।

ये वीरपादौ प्रणमंति नित्यं, ध्याने स्थिताः संयमयोगयुक्ताः। ते वीतशोका हि भवंति लोके, संसारदुर्गं विषमं तरंति ॥३॥

अर्थः—जो मनुष्य संयमको धारण कर और ध्यानमें लीन होकर वीरप्रभुको नमस्कार करता है वह समस्त शोकको दूरकर ससार–समुद्रसे पार होजाता है।

वीर प्रभुका चारित्र।

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः। प्रणमामि ×पंचभेदं *पंचमचारित्रलाभाय ॥१॥

अर्थः—सदाचार जिनेन्द्र भगवानने स्वयं पालन किया

× सामायिक १ छेदोपस्थापना २ परिहारविशुद्धि, ३ सूक्ष्मसांपराय ४ और यथाख्यात ५। * साक्षात्मोक्षका कारण यथाख्यात चारित्र है।

है और समस्त जीवोंके उपकारके लिये सबको बतलाया है। उत्तम चारित्रकी प्राप्तिके लिये नमस्कार करता हूं।

व्रतसमुदयमूलः संयमास्कंधबंधो, यमनियमपयोभिर्वर्द्धितः शीलशाखः। समितिकलितभारो गुप्तिगुप्तप्रवालो, गुणकुसुमसुगंधिः सत्तपश्चित्रपत्रः॥ शिवसुखफलदायी यो दयाछाययोढ्यः, शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः। दुरितरविजतापं प्रापयन्नंतभावं, स भवविभवहान्यैनोंस्तु चारित्रवृक्षः॥२॥

अर्थः—व्रत, संयम, नियम, यम, शील, समिति, गुप्ति, तप, महाव्रत, और दश धर्म चारित्रका रूप है। चारित्र मोक्षको देनेवाला दयाका बीज है, समस्त पाप और संसारका नाश करनेवाला है।

धर्म महिमा।

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सयामणो॥१॥

अर्थः—धर्म समस्त मंगलोंमेंसे प्रधान मंगल है। अहिंसा, संयम और तप ये धर्मके रूप हैं। जो मनुष्य धर्मको पवित्र हृदयसे धारण करता है उसको देवता भी नमस्कार करते हैं।

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः ॥
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया।
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म! मां पालय ॥२॥

अर्थः—धर्मका मूल दया है, धर्मको विद्वान् गणधरादिक मुनीश्वर धारण करते हैं, धर्मसे सर्व सुखोंकी प्राप्ति और कल्याण होता है। धर्म सेवन करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। धर्म ही जगतका बंधु है इसलिये धर्म-सेवन करनेमें अपना चित्त लगाता हूं। हे धर्म! मेरी रक्षा कर! तेरे लिये नमस्कार है।

इच्छामि भंते पडिक्कमणा इच्चारमालोचेउ तत्थ देसासिआ, असणासिआ अथाणासिआ कालासिआ मुद्दासिआ काउस्सग्गासिआ पणमासिआ पडिक्कमणाए तत्थसु आवासयसु परिहीणदा जो मए अच्चासणा मणसा बच्चिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिंदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं। दंसण वय सामाइय पोसह सच्चित्त राय भत्तेय। बंभारंभपरिग्गह अणु-

मणमुद्दिठ देसविरदेदे। एयासु यथा कहिद पडिमासु पमादाकया इचार सोहणट्ठं छेदोवट्ठवेणं अरहंत सिद्ध आयरीय उवज्झाय सव्वसाहु सक्खियं सम्मतपुव्वगं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु ३ अथ देवसियपडिक्कमणाए सव्वाइचारवि-सोहिणिमित्तं पुव्वापरियकम्मेण चउवीसतित्थ-यरभत्ति काउस्सग्गं करेमि॥

अर्थः—हे भगवन ! अंतमें मैं अब प्रतिक्रमणमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना करता हूं। द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावोंकी अनुकूल योग्यता नहीं मिलनेसे; देश, आसन, स्थान, काल, मुद्रा, कायोत्सर्ग, श्वासोश्वास, नमस्कारादि विधि, और स्तुति आदि क्रियामें शीघ्रताके लिये, छह आवश्यक कर्मोंके करनेमें कुछ भी हीनता प्राप्त हुई हो, अथवा प्रमाद और अज्ञानसे जिन दोषोंकी (अथवा मन, वचन, काय और कृत कारित अनुमोदना द्वारा) प्राप्ति हुई हो तो वे सब मिथ्या हों।

इसप्रकार दोषोंकी शांतिके लिये चौवीस तीर्थंकर-भक्ति व कायोत्सर्ग धारण करे।

णमोकार मंत्र ९ वार पढ़कर जाप देवे।

"णमो अरहंताणं" से प्रारंभकर "यावंति जिन-

चैत्यानि" इस श्लोक पर्यन्त पाठ पढ़ना चाहिये और कायोत्सर्ग धारण करना चाहिये।

चउवीसं तित्थयरे उसहाई वीर पच्छिमे वंदे।
सव्वेसिं गुणगणहरसिद्धे सिरसा णमस्सामि ॥१॥

अर्थ:—प्रथम ऋषभदेवको आदि लेकर वीरप्रभु पर्यंत चौबीस तीर्थंकर, गणधर, और सिद्ध परमेष्टीको नमस्कार करता हूं।

ये लोकेऽष्टसहस्रलक्षणधरा ज्ञेयार्णवांतर्गताः।
ये संभ्यग्भवजालहेतुमथनाश्चंद्रार्कतेजोधिकाः।
ये साध्विन्द्रसुराप्सरोगणशतैर्गीतप्रणुत्यर्चिताः
तान् देवान् ऋषभादिवीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहं ॥

अर्थ:—समस्त ज्ञेय पदार्थोंके ज्ञाता, एक हजार आठ शुभ लक्षणोंसे विराजमान, संसारके बंधनको नाश करनेवाले, करोडों सूर्य और चंद्रमासे भी अधिक तेजस्वी, मुनीश्वर नरेन्द्र और देवेन्द्रसे पूज्य ऐसे ऋषभादि चौबीस तीर्थंकरोंको मैं नमस्कार करता हूं।

नाभेयं देवपूज्यं जिनवरमजितं सर्वलोकप्रदीपं।
सर्वज्ञं संभवाख्यं मुनिगणवृषभं नंदनं देवदेवं ॥

कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं वरकमलनिभं पद्मपुष्पाभिगंधं।
क्षांतं दांतं सुपार्श्वं सकलशशिनिभं चंद्रनामानमीडं॥
विख्यातं पुष्पदंतं भवभयमथनं शीतलं लोकनाथं।
श्रेयासं शीलकोशं प्रवरनरगुरूं वासुपूज्यं सुपूज्यं।
मुक्त दान्तेन्द्रियांश्च विमलमृषिपतिं सिंहसैन्यं
मुनीन्द्रं।
धर्मं सद्धर्मकेतुं शमदमनिलयं स्तौमि शांति शरण्यं॥
कुंथुं सिद्धालयस्थं श्रमणपतिमरं त्यक्तभोगेषु चक्रं।
मल्लिं विख्यातगोत्रं खचरगुणनुतं सुव्रतं सौख्यराशिं
देवेन्द्राच्यं नमीशं हरिकुलतिलकं नेमिचंद्रं भवन्त।
पार्श्वं नागेन्द्रवंद्यं शरणमहमितो वर्द्धमानं च भक्त्या×

इच्छामि भंते चउवीस तित्थर भत्ति काउ-
स्सगो कउतस्सालोचेउ पंच महाकल्लाणसंपण्णाणं

× १ इन तीनो श्लोकोंका अर्थ बहुत ही सरल है। ऋषभ १ अजित २ संभव ३ अभिनन्दन ४ सुमति ५ पद्मप्रभ ६ सुपार्श्व ७ चन्द्रप्रभ ८ पुष्पदन्त ९ शीतलनाथ १० श्रेयांसनाथ ११ वासुपूज्य १२ विमलनाथ १३ अनन्तनाथ १४ धर्मनाथ १५ शांतिनाथ १६ कुंथुनाथ १७ अरहनाथ १८ मल्लिनाथ १९ मुनिसुव्रत २० नमिनाथ २१ नेमिनाथ २२ पार्श्वनाथ २३ महावीर २४ इस प्रकार चौवीस तीर्थंकर है।

अट्ठ महापाडिहेर सहियाण चउतीस अतिशय विशेषसंजुत्ताणं बत्तीस देवेन्द मणि मउड मत्थय महियाणं बलदेव वासुदेव चक्कहर रिसि मुणि जय अणागारोवगूढाणं थुइसय सहस्स णिलयाणं उसहाइ वीर पच्छिम मंगल महापुरिसाणं भत्तिए णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खउ कम्मक्खउ बोहिलाउ सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं। दंसण वय सामाइय पोसह सचित्तरायभत्तीय। बंभारंभ परिग्गह अणुमणमुद्दिठ देसविरदेदे। एयासु यथा कहिद पडिमासु पमादाकया। इचार सोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं अरहंत सिद्ध आयरीय उवज्झाय सव्वसाहु सक्खियं समस्त पुव्वगं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु मे भवदु मे भवदु। अथ देवसिय पडिक्कमणाए सव्वाइचारविसोहिणिमित्तं पुव्वायरीय कमेण आलोयण सिद्धभत्ति पडिक्कमणभत्ति णिट्ठिदकरण वीरभत्ति चउवीस तित्थयरभत्ति कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादिदोषपरिहारार्थं सकलदोषनि-

राकरणार्थं सर्वमलातिचारविशुद्धयर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि॥

(णमोकार मंत्र ९ बार २७ श्वासोश्वासमें जाप्य)

अर्थः—हे भगवन्! मैं समस्त दोषोंको दूर करनेके लिये चौवीस तीर्थंकरोंकी भक्ति रूप कायोत्सर्ग धारण करता हुआ अपने कृत कर्मोंकी आलोचना करता हूं।

महान् पंच कल्याणकोंसे सुशोभित, अष्ट महाप्रातिहार्य[1] सहित, चौतीस अतिशय[2] सहित, बत्तीस प्रकारके देवेन्द्रोंके मस्तकमें लगी हुई मणियोंसे पूज्य, बलभद्र–वासुदेव–चक्रवर्ती–रुद्र–ऋषि–मुनीश्वर–यती–अणगार आदि महान पुरुषोंके शिरोवंद्य, देवेंद्रोंकर सतत वंदनीय ऋषभदेवसे प्रारंभकर वीर भगवान पर्यंत चौवीस तीर्थंकर महामंगलके करनेवाले हैं, पुण्य पुरुष हैं, उनको मैं त्रिकाल वंदना करता हूं, स्तवन करता हूं, पूजा करता हूं, नमस्कार करता हूं. चौवीस भगवानकी भक्तिसे दुःखोंका नाश हो, कर्मोंका नाश हो, रत्नत्रयकी प्राप्ति हो, शुभ गति हो, समाधिमरण हो और श्री जिनेन्द्र देवके गुणोंकी प्राप्ति हो। दर्शनादि प्रतिमामें

१–अशोक वृक्ष, पुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, चामर, भामंडल, छत्रत्रय, सिंहासन और दुन्दुभि बाजोंका बजना ये आठ प्रातिहार्य हैं।

२–दश जनम, दश केवलज्ञान और चौदह देवकृत, इस प्रकार चौतीस अतिशय अर्हंत भगवानके होते हैं।

सर्व दोषोंकी विशुद्धिके लिये पूर्व आचार्योंकी परिपाटीके अनुकूल अपने समस्त कृत कर्मोंकी आलोचना पूर्वक श्री सिद्ध प्रतिक्रमणभक्ति-वीरभक्ति और चौवीस तीर्थंकर-भक्ति करनेपर विशेष दोषोंकी शुद्धिके लिये समाधि भक्ति कायोत्सर्ग धारण करता हूं। अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुकी शाक्षी पूर्वक सम्यग्दर्शन सहित उत्तमोत्तम व्रतोंका समारोह मेरे हृदयमंदिरमें हो।

(९ वार णमोकार मंत्र २७ श्वासमें)

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्॥
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्वे।
संपद्यंतां मम भव भवे यावदेतेऽपवर्गः॥१॥

अर्थः—जैनागम अथवा जिन सिद्धान्तका अभ्यास, श्री जिनेन्द्रदेव भगवानकी भक्तिपूर्वक वंदना, सदाचार धारी जैन यति-ब्रह्मचारी ऐलक और विद्वान महात्माओंका संग, श्री जिनेन्द्र देव प्रभृति पुण्य पुरुषोंकी कथाका श्रवण, दूसरोंकी निंदाका त्याग, दूसरोंके तिरस्कारमें मौन, समस्त जीवमात्रमें प्रेम, हित मित वचन और आत्मभावना इतनी वस्तुओंका समागम जब तक मोक्षकी प्राप्ति न हो तब तक नित्य भव भवमें रहो।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनं।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥

अर्थः—हे जिनेन्द्रदेव ! आपके पवित्र चरणकमल जब-तक मुझे मोक्षकी प्राप्ति न हो तब तक मेरे हृदय-मंदिरमें विराजमान रहो और मेरा हृदय आपके चरणकमलोंमें लीन रहे।

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीण च जं मए भणिय।
तं खमउ णाणदेव य मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु ॥

अर्थः—हे जिनशासन (जिनागम) देव! मैंने अक्षर मात्रा रहित जो कुछ अशुद्ध उच्चारण किया हो, सो क्षमा करो और मेरे दुःखोंका नाश करो।

दुक्खक्खउ कम्मक्खउ बोहिलाहो सुगइगमणं।
सम्मं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

अर्थः—हे भगवन् ! मेरे दुःखोंका नाश हो, कर्मोंका नाश हो, रत्नत्रयकी प्राप्ति हो, सुगतिगमन हो, सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो, समाधिमरण हो और श्री जिनराजके गुणोंकी प्राप्ति हो ऐसी मेरी भावना है।

इच्छामि भंते इरियावहियस्स आलोचेउं पुव्वुत्तर दक्षिण पच्छिम चउदिसु विदिसासु विह-

रमाणेण जुगुंतर विट्ठिणा दट्ठव्वा उवउवचरियाए पमाददोसेण पाणमूद जीवसत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

(९ बार णमोकार मंत्रकी जाप, और आवर्त्त चारों दिशामें एवं मणु त्त) ॥

कल्याण आलोयणा (आलोचना)

परमप्पइ वद्धमई परमेट्ठीणं करोमि णवकारं ।
सगपरसिद्धिणिमित्तं कल्लाणालोयणा वोच्छं ॥१॥

अर्थः—अनंत ज्ञानके धारक श्री अरहंत भगवानको नमस्कार करता हूं। और जीवोंके कल्याणार्थ मैं कल्याण-आलोचना कहता हूं ॥१॥

रे जीवाणंतभवे ससारे संसरंत बहुवार ।
पत्तो ण बोहिलाहो मिच्छत्तवियंभपयडीहिं ॥२॥

अर्थः—रे जीव! मिथ्यात्वकर्मकी तीव्र प्रकृतियोंके उदयसे इस अनंत जन्म-मरणरूपी संसारमें तूने अनंतबार

परिभ्रमण किया, परंतु अब तक तुझे रत्नत्रयकी प्राप्ति कभी नहीं हुई ॥२॥

संसारभमणगमणं कुणंत आराहिऊ ण जिणधम्मो।
तेण विणा वर दुक्खं पत्तोसि अणंतवाराई ॥३॥

अर्थः—इस संसारमें परिभ्रमण करते हुए तूने जिन धर्मका कभी नहीं पालन किया और उस जैनधर्मकी आराधनाके बिना इस संसारमें तुझको अनंतवार महान दुःख प्राप्त हुए हैं ॥३॥

संसारे णिवसंत्ता अणंत मरणांइ पाविओसि तुमं।
केवलि विणाण तेसिं संखापज्जत्ति णो हवइ ॥४॥

अर्थः—इस संसारमें निवास करते हुए तूने अनंतवार मरण किये परंतु उस एक जैनधर्मके विना उन मरणोंकी संख्या पूरी नहीं हुई। अर्थात् जन्म मरणका अंत नहीं हुआ।

तिण्णि सया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सवारमरणाइं।
अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तोसि णिगोयमज्झम्मि ॥५॥

अर्थः—रे जीव! तूने निगोदमें अंतर्मुहूर्त कालमें छ्यासठ हजार तीनसौ छत्तीसवार मरण किया, ४८ मिनटमें ६६३३६ बार जन्म-मरणके दुःखको प्राप्त हुआ।५॥

वियलिंदिए असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणेहि।
पंचेंदिय चउवीसं खुद्दभवन्तो मुहुत्तस्स ॥ ६ ॥

अर्थः—हे जीव ! तूने दो इन्द्रिय अवस्थामें उस अन्त-मुहूर्तकालके मध्य अस्सी ८० क्षुद्रभव धारण किये। उन इन्द्रिय अवस्थामें ६० साठ क्षुद्रभव धारण किये। चौ इन्द्रिय पर्यायमें ४० चालीस क्षुद्रभव धारण किये और पचेन्द्रिय पर्यायके २४ क्षुद्रभव धारण किये। इस जीवने एक अन्तर्मुहूर्त-कालमें ६६३३६ जन्म मरण किये। इसका स्पष्टीकरण यह है कि एकेन्द्रियके ११ भेद हैं-एक ही जीव उन ११ भेदोंमें क्रमसे एक श्वासोच्छ्वासके समय १८ वार जन्म मरणको प्राप्त होता है इसलिये एकेन्द्रियके प्रत्येक भेदमें ६०१२ जन्म मरणको प्राप्त होता है सब मिलाकर ६६१३२ भेद होते हैं। और दो इन्द्रिय आदिके समुदित भेद २०४ को जोड़ देनेसे ६६३३६ भेद होते हैं।

अण्णोण्णं खज्जंता जीवा पावंति दारुणं दुक्खं।
णहु तेसिं पज्जत्ती कह पावइ धम्ममइसुण्णो ॥७॥

अर्थः—परस्पर एक दूसरेके साथ क्रोध करते हुये वे जीव अत्यन्त घोर दुःखको प्राप्त होते हैं। उनकी कभी पर्याप्ति ही पूरी नहीं होती है। उनके धर्म-बुद्धि नहीं है। अतएव निरन्तर वे दुःखके ही पात्र हैं। अनन्तानन्त जन्म मरणके दुःखोंको सहन करते हैं। ७ ॥

मायापिया कुडम्बो सुजणजण कोवि णावई सत्थे।
एगागी भमई सदा ण हि बीओ अत्थि संसारे॥८

अर्थः—इस भयानक संसारमें परिभ्रमण करते हुए जीवके साथ माता पिता, कुटुंबके लोग तथा परिवारके लोगोंमेंसे एक भी अपने साथ नहीं जाता है। यह जीव सदैव अकेला ही परिभ्रमण करता है और अपने किये पापकर्मोंके फलसे जन्म मरणके महान दारुण दुःखोंको प्राप्त होता है। परन्तु इसका साथी कोई नहीं होता है।

आउक्खए वि पत्ते ण समत्थो को वि आउदाणे य।
देवेन्दो ण णरेन्दो मणिओसहमन्तजालाई॥९॥

अर्थः—जब आयुका अन्त आता है, आयु पूरी हो जाती है तब कोई भी उस आयुको नहीं बढ़ा सकता है—न इन्द्र बढा सकता है, न चक्रवर्ती बढ़ा सकता है और न मणि औषधि वा यंत्र तंत्र आदि। कोई भी किसी प्रकारसे आयुको नहीं बढ़ा सकते हैं।

सम्पडि जिणवरधम्मो लद्धोसि तुमं विसुद्धजोएण।
खमसु जीवा सव्वे पत्ते समये पयत्तेण॥१०॥

अर्थः—रे जीव! इस समय महान पुण्योदयसे मन वचन कायके योगोंकी विशुद्धिसे तुझे इस जैनधर्मकी प्राप्ति हुई है। इसलिये बड़े प्रयत्नके साथ प्रत्येक समयमें तू समस्त जीवोंको क्षमाकर, विशुद्ध भावसे दया पालन कर॥१०॥

तिण्णिसया तेसट्ठि मिच्छत्ता दंसणस्स पडिवक्खा।
अण्णाणे सद्दहिया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥११॥

अर्थः—आत्माधर्मका प्रतिपक्षी मिथ्यात्व है। मिथ्यात्वके ३६३ तीन सौ तिरेसठ भेद हैं। यदि उनका मैंने अपने अज्ञानसे श्रद्धान किया हो तो वे सब मेरे पाप मिथ्या हों। संसारमें सबसे भयंकर पाप एक मिथ्यात्व ही है। संसारके परिभ्रमणका मूल कारण भी एक मिथ्यात्व ही है। इसलिये आत्महितेच्छु भव्य जीवोंको सबसे प्रथम मिथ्यात्वका परित्यागकर भावविशुद्धिसे दृढ श्रद्धानपूर्वक सम्यग्दर्शन धारण करना चाहिये और अज्ञानसे जो मिथ्यात्व भाव हुए हों उनसे उन कर्मोंकी निर्जरा होनेके लिये भावना करनी चाहिये और भविष्यमें मिथ्यात्व भाव नहीं हो इस प्रकारकी भावना करनी चाहिये।

महुमज्जमंसजूआपमिदी वसणइं सत्तभेयाइं।
णियमो ण कयं च तेसिं मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥१२

अर्थः—मद्य मधु मांसका सेवन और जुआको आदि लेकर जो सात व्यसन हैं उनके परित्यागका नियम कदाचित मैंने न किया हो तो वह सब मेरे पाप मिथ्या हों। सप्त व्यसनोंका सेवन जन्म मरण रूप संसारको बढानेवाला है। सर्व प्रकारके पवित्राचरणोंसे सप्त व्यसनोंका परित्याग करना चाहिये।

अणुवय महव्वया जे जमणियमासीलसाहुगुरुदिण्णा
जे जे विराहिदा खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥१३

अर्थः—साधु परमेष्ठी अथवा आचार्य परमेष्ठी आदि (गृहस्थाचार्य) पूज्य पुरुषोंने मेरे हितके लिये अणुव्रत महाव्रत और सप्तशील नियम अथवा यमरूपसे दिये हों और उनमेंसे जिन२ व्रतोंकी विराधना हुई हो वह सब मेरे पाप मिथ्या हों।

णिच्चिदरधादुसत्तय तरुदस वियलेंदिएसु छच्चेव।
सुरणरयतिरिय चउरो चउदसमणुए सदसहस्सा॥१४
एदे सव्वे जीवा चउरासीलक्खजोणिवसि पत्ता।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥१५

अर्थः—नित्य निगोदके जीवोंकी सात लाख योनि, इतर निगोदके जीवोंकी सात लाख योनि. पृथ्वीकायिक जीवोंकी सात लाख योनि, जलकायिक जीवोंकी सात लाख योनि, अग्निकायिक जीवोंकी सात लाख योनि, वायुकायिक जीवोंकी सात लाख योनि, दो इन्द्रिय जीवोंकी दो लाख, तीन इन्द्रिय जीवोंकी दो लाख, चौइन्द्रिय जीवोंकी दो लाख योनि, देवोंकी चार लाख योनि, नारकी जीवोंकी चार लाख योनि, पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंकी चार लाख योनि और मनुष्योंकी दस लाख योनि, इस प्रकार समस्त संसारी जीवोंकी योनि चौरासी लाख हैं। इन चौरासी लाख योनिमें उत्पन्न हुए

जिन जिन जीवोंकी विराधना मेरेसे हुई हो वे सब मेरे पाप मिथ्या हों।

पुढवीजलग्गिवाओ तेओवि वणप्फई य वियलतया।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज॥१६

अर्थ:—पृथ्वीकायिक जीव, जलकायिक जीव, अग्नि-कायिक जीव, वायुकायिक जीव, वनस्पतिकायिक जीव और विकलत्रय-(दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय) जीवोंकी जो जो विराधना मुझसे हुई हो वह सब मेरे पाप मिथ्या हों॥ १६॥

मलसत्तरा जिणुत्ता वयविसये जा विराहणा विविहा
सामाइय खमइया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज॥१७

अर्थ:—श्री भगवान जिनेन्द्रदेवने व्रतोंके अतीचार (मल) सत्तर बतलाये हैं, उनमेंसे जो जो अतीचार मुझसे लगे हों या मुझसे व्रतकी जो विराधना हो गई हो अथवा सामायिक और क्षमा भावोंसे विराधना हो गई हो तत्सम्बन्धी जो पाप मुझसे हुआ है वह सब मेरा पाप मिथ्या हो॥१७॥

फलफुलछल्लिवल्लि अणगल ण्हाणं च धोवणाईहिं।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज॥१८॥

अर्थ:—फल, पुष्प, छाल, लता आदिको कार्यमें लानेसे जिन जिन जीवोंकी विराधना हुई हो, विना छाने पानीसे

स्नानादि करनेसे जीवोंकी विराधना हुई हो, विना छने जलसे वस्त्रादि धोनेमें जिन जीवोंकी विराधना हुई हो, इत्यादि अनेक प्रकारसे जलके जीवोंकी विराधना हुई हो वह मेरे सब पाप मिथ्या हों ॥ १८ ॥

णो सीलं णेव खमा विणाओ तवोण संजमोवासा।
ण कया ण भाविकया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥१९॥

अर्थः—हे भगवान! मैंने जो शील पालन नहीं किया हो, क्षमाभाव न धारण किया हो, देव शास्त्र गुरु और धर्मायतनोंकी विनय नहीं की हो, संयम पालन नहीं किया हो और उपवास आदि तपश्चरण नहीं किये हों तथा उनके धारण करनेकी भावना भी नहीं की हो तत्संबंधी वह सब मेरे पाप मिथ्या हों ॥ १९ ॥

कन्दफलमूलबीया सचित्तरयणीय भोयणाहारा।
अण्णाणे जे वि कया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२०॥

अर्थः—हे भगवान्! यदि मैंने अपने अज्ञानसे कंद-मूल, फल, बीज आदि खाये हों, अन्य सचित्त पदार्थोंका भक्षण किया हो इत्यादिक पापारंभ किया हो, व जो जो पाप मैंने किये हों वह सब मेरे पाप मिथ्या हों ॥ २० ॥

णो पूया जिणचरणे ण पत्तदाणं ण चेइयागमणं।
ण कया ण भाविय मई मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२१॥

अर्थः—मैंने श्रीजिनेन्द्र भगवानके पवित्र चरणकमलोंकी पूजा नहीं की, पात्रको दान नहीं दिया और न ईर्यापथ पूर्वक गमनागमन ही किया तथा न इन पवित्र कार्योंके करनेकी भावना ही की, इस प्रकार जो पाप मुझसे लगे हों वे सब मेरे पाप मिथ्या हों ॥ २१ ॥

बंभारंभपरिग्गह सावज्जा बहु पमाददोसेण ।
जीवा विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२२॥

अर्थः—हे भगवान्! मैंने अपने प्रमादके दोषसे ब्रह्मचर्यमें दोष लगाये हों, बहुत आरंभ तथा बहुत परिग्रहके संचय करनेमें अत्यधिक पाप किया हो, जीवोंकी विराधना की हो और सावद्य कार्योंके करनेसे जिन जीवोंकी विराधना की हो वे सब मेरे पाप मिथ्या हों ॥ २१ ॥

सत्तस्सिउखित्तभवाऽतीदाणागयसुवट्टमाणजिणा ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२३॥

अर्थः—हे प्रभो! एकसौ सत्तर (१७०) कर्मभूमियोंमें होनेवाले भूत भविष्यत् वर्तमान काल संबंधी श्री तीर्थंकर परम देवाधिदेवोंकी जो विराधना की हो, उनका जो अनादर किया हो अथवा अश्रद्धाके भाव प्रकट किये हों तत्संबंधी मेरे समस्त पाप मिथ्या हों ॥ २१ ॥

अरुहासिद्धाइरिया उवज्झाया साहु पञ्चपरमेट्ठी ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२४॥

अर्थः—भगवान श्री अरहंत परमेष्ठी, श्री सिद्ध परमेष्ठी, श्री आचार्य परमेष्ठी, श्री उपाध्याय परमेष्ठी तथा सर्वसाधु परमेष्ठीकी जो जो विराधना मुझसे हुई हो, जो अविनय हुई हो, पंच परमेष्ठीकी पवित्र आज्ञा भंग हुई हो अथवा अश्रद्धा की हो वह सब मेरे पाप मिथ्या हों ॥ २४ ॥

जिणवयण धम्म चेइय जिणमडिया किट्टिमा
अकिट्टिमया ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुकडं हुज्ज ॥२५॥

अर्थः—हे भगवन्! मैंने जिनवचन, जिनधर्म, जिनचैत्य, जिनालय और कृत्रिम अकृत्रिम जिन प्रतिमाओंकी जो विराधना की हो, आज्ञा भङ्ग की हो, अविनय और आसादना की हो तो वह सब मेरे पाप मिथ्या हों ॥ २५ ॥

दंसणणाणचरित्ते दोसा अट्ठट्ठपञ्चभेयाइं ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुकडं हुज्ज ॥२६॥

अर्थः—सम्यग्दर्शनके आठ शंकादिक दोष हैं, सम्यग्ज्ञानके आठ दोष हैं और सम्यक्चारित्रके पांच दोष हैं, उन समस्त दोषोंमेंसे जो जो दोष मुझे लगे हों वह सब मेरे पाप मिथ्या हों ॥ २० ॥

मइसुइओही मणपज्जयं तहा केवलं च पञ्चमयं ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुकडं हुज्ज ॥२७॥

अर्थः—हे भगवान्! मैंने मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान इन पांच प्रकारके ज्ञानोंमेंसे जिस किसी ज्ञानकी विराधना की हो–आसादना की हो, तत्सम्बन्धी वह सब मेरे पाप मिथ्या हों ॥ २७ ॥

आयारादी अङ्गा पुव्वपइण्णा जिणेहि पण्णत्ता।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२८॥

अर्थः—हे भगवान्! श्रुतज्ञान (समयदेवता) के ग्यारह अंग और चौदह पूर्व श्री जिनेन्द्र भगवानने बतलाये हैं। उनके स्वरूपमें जो जो विराधना मैंने की हो तत्सम्बन्धी वह समस्त मेरे पाप मिथ्या हों ॥ २८ ।

पञ्चमहाव्वयजुत्ता अट्ठादसमहस्ससीलकयसोहा।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२९॥

अर्थः—हे भगवान्! पांच प्रकारके महाव्रतोंसे भले-प्रकार सुशोभित और अठारह हजार शीलव्रतसे विभूषित ऐसे श्रीजिनेन्द्र भगवानकी मैंने जो विराधना की हो, उनकी अविनय की हो, अश्रद्धाके भाव प्रगट किये हों तो तत्सम्बन्धी वह मेरे सब पाप मिथ्या हों ॥ २९ ॥

लोए पियासमाणा रिद्धिपवण्णा महागणवइया।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३०॥

अर्थः—हे आत्मन! तूने इस संसारमें अनेक सिद्धि-

थोंके धारक, सर्वोत्कृष्ट महिमाको प्राप्त और जगतके पिताके समान गणधरदेवोंकी जो जो विराधना की हो तत्सम्बन्धी वह सब मेरे पाप मिथ्या हों ॥ ३० ॥

णिग्गन्थ अज्जियाओ सड्ढासड्ढीय च चउविहो संघो
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३१

अर्थः—हे भगवन् ! मैंने परम दिगम्बर निर्ग्रंथ मुनि आर्यिका श्रावक और श्राविका इस प्रकार चार प्रकारके संघकी विराधना की हो, अविनय प्रकट की हो, मिथ्याभाव प्रकट किया हो तो तत्सम्बन्धी वह मेरे सब पाप मिथ्या हों ॥ ३१ ॥

देवासुरामणुस्सा णेरइया तिरियजोणिगयजीवा।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज॥३२

अर्थः—हे भगवान ! मैंने भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष और कल्पवासी इस प्रकारके देवोंकी विराधना की हों, असत दूषण लगाये हों, मनुष्य तिर्यंच और नारकी जीवोंकी विराधना की हों तो तत्सम्बन्धी वह मेरे सब पाप मिथ्या हों ॥३२॥

कोहो माणो माया लोहो एत्थम्म रायदोसाइं।
अण्णाणें जे वि कया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३३

अर्थः—हे भगवन ! मैंने अपने अज्ञानभावसे जो क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष और कामादिक जो दुर्भाव

किये हों अथवा अज्ञानसे क्रोध दिक निंद्य कार्य किये हों तो तत्सम्बन्धी वह मेरे समस्त पाप मिथ्या हों ॥ ३३ ॥

परवत्थं परमहिला पमादजोएण अज्झियं पावं ।
अण्णावि अकरणीया मिच्छा मे दुकडं हुज्ज ॥३४

अर्थः—परवस्त्र और परस्त्री आदिके संबंधमें प्रमादयोग-पूर्वक जो पाप मैंने किये हों अथवा जो जो नहीं करनेयोग्य कार्य किये हों वे सब मेरे पाप मिथ्या हों ॥ ३४ ॥

इक्को सहावसिद्धो सोह अप्पा वियप्पपरिमुक्को ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरण सो एक्क परमप्पा ॥३५

अर्थः—जो आत्मा एक है, शरीरादिक नोकर्म द्रव्य-कर्म और भावकर्मसे रहित है, स्वभावसे स्वयं सिद्ध है और सर्व प्रकारके विकल्पोंसे रहित है, ऐसे एक आत्माकी ही मैं शरण जाता हूं। ऐसे परमात्माके सिवाय अन्य कोई भी मेरे लिये शरण नहीं है ॥ ३५ ॥

अरस अरूव अगन्धो अव्वावाहो अणंतणाणमओ
अण्णो ण मज्झ सरणं सरण सो एक्क परमप्पा ॥३६

अर्थः—जो परमात्मा रसरहित है, रूपरहित है, गंधरहित है, पुद्गलिक जड पदार्थोंके गुणधर्मोंसे सर्वथा रहित है, सब प्रकारकी बाधासे रहित है और अनन्तज्ञान स्वरूप है, ऐसा एक परमात्मा ही मुझे शरण है। अन्य कोई भी शरण नहीं है ॥ ३६ ॥

णेयपमाणं णाणं समए इक्केण हुन्ति ससहावे।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥३७

अर्थः—परमात्माका यह अनन्तज्ञान यद्यपि अपने स्वभावमें ही स्थिर रहता है तथापि वह प्रत्येक समयमें समस्त ज्ञेय पदार्थोंको जानता रहता है अर्थात् परमात्माका ज्ञान आत्माके प्रदेशोंमें प्रतिष्ठित होनेपर भी समस्त ज्ञेय पदार्थोंमें व्यापक है—सबको प्रत्यक्ष करनेवाला है। ऐसा परमात्मा ही मुझे शरण है। अन्य कोई भी मुझे शरण नहीं है॥ ३७॥

एयाणेयवियप्पप्पसाहणे सयसहावसुद्धगई।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥३८

अर्थः—उस परमात्माको चाहे एक प्रकारसे सिद्ध किया जाय, चाहे अनेक प्रकारसे सिद्ध किया जाय, वह सदा अपने ही स्वभावमें शुद्धबुद्ध स्वरूप स्थित रहता है। ऐसा परमात्मा ही मुझे एक शरणभूत है। अन्य कोई भी मुझे शरणभूत नहीं है॥ ३८॥

देहपमाणो णिच्चो लोयपमाणो वि धम्मदो होदि।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥३९

अर्थः—वह परमात्मा नित्य है। शरीर प्रमाणके बराबर है और प्रदेशोंके द्वारा लोक-प्रमाण है। केवल समुद्घातमें आत्मा समस्त लोकके प्रमाण असंख्यातप्रदेशी सर्वगत होता

है। इसलिये यह आत्मा प्रदेशोंकी अपेक्षा भी लोकप्रमाण है। वह परमात्मा ही मुझे एक शरणभूत है, अन्य कोई भी शरण नहीं है ॥ ३९ ॥

केवलदसणणाण समये इक्केण दुण्णि उवउग्गा।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरण सो एक परमप्पा ॥४०॥

अर्थः—उस परमात्माके केवलदर्शन और केवलज्ञान इस प्रकार दोनों ही उपयोग एक समयमें एक साथ होते हैं। और वे दोनों उपयोग अनन्तकाल पर्यन्त एक साथ ही पदार्थोंके स्वरूपको व्यक्त करते रहते हैं। ऐसा परमात्मा ही मुझे शरणभूत है ॥ ४० ॥

सगरूवसहजसिद्धो विहावगुणमुक्कमवावारो।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक परमप्पा ॥४१॥

अर्थः—वह परमात्मा अपने स्वाभाविक स्वरूपमें ही लीन रहता है, स्वाभाविक स्वभावसे ही सिद्ध है और राग द्वेषादिक वैभाविक गुणोंसे रहित होनेके कारण समस्त कर्मोंके व्यापारसे रहित हैं। ऐसे वे परमात्मा ही मुझे शरण हैं, उनके सिवाय अन्य कोई भी मुझे शरण नहीं है ॥ ४१ ॥

सुण्णो णेय असुण्णो णोकम्मोकम्मवज्जिओ णाण।
अण्णो ण मज्झ सरण सरणं सो एक परमप्पा ॥४२॥

अर्थः—वह परमात्मा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श रहित होनेके

कारण शून्य है तथा ज्ञानमय आत्म-स्वरूप होनेके कारण शून्यरूप भी नहीं है। उस परमात्माका ज्ञान नोकर्मोंसे भी रहित है, ऐसा वह परमात्मा मुझे शरण है। ज्ञानावरण आदि कर्मोंसे भी रहित है। अन्य कोई भी मुझे शरण नहीं है॥४२॥

णाणउ जो ण भिण्णो वियप्पभिण्णो सहाव-
सुक्खमओ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा॥४३

अर्थः—जो परमात्मा अपने केवलज्ञानसे कभी भिन्न नहीं है परन्तु सब प्रकारके विकल्पोंसे सर्वथा सदा भिन्न ही है, वह परमात्मा अपने स्वाभाविक सुखमय है ऐसा परमात्मा ही मुझे शरणभूत है, अन्य कोई भी शरण नहीं है॥४३॥

अच्छिण्णोवच्छिण्णो पमेयरूवत्त गुरुलहू चेव।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा॥४४

अर्थः—जो कभी किसी प्रकार छिन्न भिन्न नहीं होता है, जो सदैव अखण्ड स्वरूप है, तथा अवच्छिन्न है, अन्तिम शरीरके प्रमाणके समान है अथवा असंख्यात प्रदेशमय है, जो ज्ञानके द्वारा समस्त पदार्थोंके समान है, समस्त पदार्थोंका ज्ञाता है, जो अगुरुलघुगुणसे सुशोभित है, ऐसा परमात्मा ही मुझे शरणभूत है, अन्य कोई शरण नहीं हैं॥४४॥

सुहुअसुहपावविगओ सुद्धसहावेण तम्मयं पत्तो।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा॥४५

अर्थः—जो परमात्मा शुभभाव और अशुभभाव दोनोंसे रहित है, जो केवल शुद्ध स्वभावके द्वारा अपनी आत्माहीमें तल्लीन है, अथवा जो अपने केवल शुद्ध स्वभावमें ही प्रतिष्ठित है, ऐसा परमात्मा ही मुझे शरणभूत है, अन्य कोई भी मुझे शरण नहीं हैं ॥ ४५ ॥

णो इत्थी णो णउंसो णो पुंसो णेव पुण्णपावमओ
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं मो एक परमप्पा ॥४६

अर्थः—जो परमात्मा न तो स्त्री स्वरूप है, न नपुंसक स्वरूप है, न पुरुष स्वरूप है, न पुण्यस्वरूप है, न पापरूप है, न क्रिय है, न अक्रिय है, वह परमात्मा अपने स्वभावमें ही सुस्थित है। वही परमात्मा मुझे शरण है, अन्य कोई भी शरण नहीं हैं ॥ ४६ ॥

ते को ण होदि सुयणो तं कस्स ण बन्धवो ण सुयणो वा।
अप्पा हवेइ अप्पा एगागी जाणगो सुद्धो ॥४७

अर्थः—हे आत्मन् ! तेरा इस संसारमें कोई भी सगासम्बन्धी कुटुम्बी नहीं है, तथा तू भी किसीका सगासम्बन्धी कुटुम्बी नहीं है। यह आत्मा सदैव अपने आत्मस्वरूप ही है, सुस्थिर है, अकेला है, समस्त पदार्थोंका ज्ञाता है, सदैव शुद्ध अनन्त सुखमय है ॥ ४७ ॥

जिणदेवो होउ सया मई सुजिणसासणे सया होउ।
सण्णासेण य मरणं भवे भवे मज्झ सम्पदओ ॥४८

अर्थः—मैं श्री जिनेन्द्रदेवकी ही सदा सेवा करता रहूं। श्री जिनेन्द्रदेवके सिवाय अन्य किसी देवको न मानूं। मेरी बुद्धि सदा श्रीजिनशासनके सेवन करनेमें तल्लीन रहे। जैनधर्मकी श्रद्धा, भक्ति और सेवामें मेरी बुद्धि रहे। जिन-धर्मको छोड़कर अन्य किसी भी धर्ममें मेरी बुद्धि न जाय। मेरा मरण सदा समाधिपूर्वक ही हो। समाधिमरणके सिवाय अन्य मरण नहीं हो। यह सम्पत्ति मुझे भव भवमें प्राप्त हो।

जिणो देवो जिणो देवो जिणो देवो जिणो जिणो।
दयाधम्मो दयाधम्मो दयाधम्मो दया सया ॥४९॥

अर्थः—इस संसारमें सच्चे देव एक जिन ही हैं; देव एक जिन ही हैं, देव एक जिन ही हैं, भगवान श्री जिनेन्द्रदेव—श्री अरहंतदेव ही देव हैं, अन्य कोई भी देव नहीं है, धर्म दयारूप ही है, धर्म दयामयी ही है, धर्म दया ही है, धर्म सदा दयामय ही होता है, दया धर्मके सिवाय अन्य कोई भी धर्म नहीं है और न होसक्ता है ॥ ४९ ॥

महासाहू महासाहू महासाहू दिगम्बरा।
एवं तच्च सदा हुज्ज जाव णो मुत्तिसङ्गमो ॥५०॥

अर्थः—महासाधु नग्न दिगम्बर महर्षि ही होते हैं। महा-

साधु दिगम्बर जैन मुनीश्वर ही होते हैं। महासाधु दिगम्बर ही होते हैं, अन्य कोई भी महासाधु नहीं हैं। हे प्रभो! जबतक मुझे मोक्षकी प्राप्ति न हो तबतक मेरे हृदयमें यही अटल श्रद्धान और यही तत्व दृढ़तासे बना रहे अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति पर्यंत सत्यदेव, सत्यगुरु, सत्यधर्मकी श्रद्धा अविचलभावसे निरन्तर बनी रहे ॥ ५० ॥

एवमेव गओ कालो अणन्तो दुक्खसङ्गमं।
जिणोवदिट्ठसण्णासे ण यत्तारोहणा कया ॥५१

अर्थः—हे प्रभो! आजतक मेरा अनन्तकाल संसारके दारुण दुःखको भोगते हुए ही व्यर्थ व्यतीत होगया। मैंने अबतक श्री जिनेन्द्रदेव भगवानके द्वारा कहे हुये समाधिमरणके लिये कभी भी प्रयत्न नहीं किया। अब मेरा मरण हो तो समाधिमरणपूर्वक ही हो, ऐसी मेरी दृढ़ भावना भव-भवमें निरन्तर बनी रहे ॥ ५१ ॥

सम्पद एव सम्पत्ताराहणा जिणदेसिया।
किं किं ण जायदे मज्झं सिद्धिसंदोहसंपई ॥५२

अर्थः—हे प्रभो! महान् पुण्योदयसे इस समय मुझे श्री जिनेन्द्रदेव भगवानकी कही हुई आराधना प्राप्त हुई है। इनके प्राप्त होजानेसे इस संसारमें ऐसी कौनसी सिद्धि और सम्पत्ति है जो मुझे प्राप्त नहीं हो। इन आराधनाओंके प्रभा-

वसे समस्त प्रकारकी सिद्धियां स्वयमेव अवश्य ही प्राप्त हो जायगी इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है ॥ ५२ ॥

अहो धम्मं अहो धम्मं अहो मे लद्धि णिम्मला।
संजादा सम्पया सारा जेण सुक्खमणूपमं ॥५३॥

अर्थः—यह श्री जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ दया धर्म बडा ही आश्चर्यकारक है। तथा यह सबसे उत्कृष्ट है, सर्वोत्तम है और यह मुझे प्राप्त हुई अत्यन्त निर्मल काललब्धि भी अतिशय आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है इस निर्मल काललब्धि और जिनधर्मके प्रसादसे मुझे आराधनारूप सर्वोत्तम सम्पत्ति प्राप्त हुई है। इस आराधनारूप महासम्पत्तिसे ही उपमा रहित मोक्ष-सुख अवश्य ही प्राप्त होगा।

एवं आराहन्तो आलोयणवन्दणापडिक्कमणं।
पाइव फलं य तेसिं णिद्दिट्ठं अजियबम्भेण ॥५४

अर्थः—इस प्रकार आलोचना, वन्दना और प्रतिक्रमणकी आराधना करनेसे भगवान् श्री जिनेन्द्रदेवकी कही हुई मोक्ष अवश्य प्राप्त होती है। यह आलोचनाका स्वरूप अति संक्षेपमें देशयति "अजित" ब्रह्मचारीने मनोज्ञरूपसे कहा है।

अथ लघु सहस्रनामस्तोत्रम्।

नमस्त्रैलोक्यनाथाय, सर्वज्ञाय महात्मने।
वक्ष्ये तस्यैव नामानि, मोक्षसौख्याभिलाषये ॥१॥
निर्मलः शास्वतो शुद्धो निर्विकारो निरामयः।
निःशरीरो निरातंको शुद्धसूक्ष्मो निरञ्जनः ॥२॥
निष्कलङ्को निरालम्बो निममो निमंलोत्तमः।
निभयो निरहङ्कारो निर्विकारो निरुक्तयः ॥३॥
निर्दोषो निरुजः शान्तो निर्भयो निर्मंमः शिवः।
निस्तरङ्गो निराकारो निःकर्मो निकलः प्रभुः॥४॥
निर्वादो निरुपज्ञानी निरागो निर्धनो जिनः।
निःशब्दो प्रतिमश्रष्ठो उत्कृष्टो ज्ञानगोचरः ॥५॥
निःसङ्गो प्राप्तकैवल्यो नैष्ठिकः शब्दवर्जितः।
अनघो महापूतात्मा जगत्शिखरशेखरः ॥६॥
निःशब्दो गुणसम्पन्नः पापतापप्रणाशनः।
सोपयोगो शुभं प्राप्तः कर्मद्योतबलावहः ॥७॥
अजरो अमरो सिद्धः अर्चितो अक्षयो विभुः।
अमूर्तो अच्युतो ब्रह्मः विष्णुरीशः प्रजापतिः ॥८॥

अनिंद्यो विश्वनाथश्च अजो अनुपमो भवः।
अप्रमेयो जगन्नाथः बोधरूपो जितात्मकः ॥९॥
अव्ययो सकलाराध्यो निष्पन्नो ज्ञानलोचनः।
अछेद्यो निर्मलो नित्यः सर्वसङ्कल्पवर्जितः ॥१०॥
अजयो सर्वतोभद्रः निःकषायो भवान्तकः।
विश्वनाथः स्वयंबुद्धः वीतरागो जिनेश्वरः ॥११॥
अन्तको सहजानन्दः आवागमनगोचरः।
असाध्यः शुद्धचैतन्यः कर्मनोकर्मवर्जितः ॥१२॥
अन्तको विमलज्ञानी निष्पृहो निःप्रकाशकः।
कर्मजीतो महात्मानम् लोकत्रयशिरोमणिः ॥१३॥
अव्याबाधो वरः शम्भू विश्ववेदी पितामहः।
सर्वभूतहितो देवः सर्वलोकशरण्यकः ॥१४॥
आनन्दरूपो चैतन्यो भगवान् त्रिजगद्गुरुः।
अनन्तानन्तधी शक्तिस्तुताव्यक्ताव्ययात्मकः॥१५
अष्टकर्मविनिर्मुक्तो सप्तधातुविवर्जितः।
गारवादत्रयो दूरः सर्वज्ञानादिसंयुतः ॥१६॥
अभवः प्राप्तकैवल्यो निर्वाणो निरुपेक्षिकः।
निकलो केवलज्ञानी मुक्तिसौख्यप्रदायिकः॥१७॥

अनामयो महाराध्यो वरदो ज्ञानपावनः ।
सर्वो शस्वत्सुखावास: जिनेन्द्रो मुनिसंस्तुतः ॥१८
अणुनः परमज्ञानी विश्वतत्वप्रकाशकः ।
प्रबुद्धो भगवान्नाथ ! प्रशस्तपुण्यकारकः ॥१९॥
शंकरः सुगतो रुद्रः सर्वज्ञो मदनान्तकः ।
ईश्वरो भुवनाधीशो सचित्तो पुरुषोत्तमः ॥२०॥
सद्योजात महात्मानं विमुक्तो मुक्तिवल्लभ: ।
योगीन्द्रोऽनादिसंसिद्धो निरहो ज्ञानगोचरः॥२१॥
सदाशिवः चतुर्वक्तृः सत्यसौख्यत्रिपुरांतकः ।
त्रिनेत्रो त्रिजगत्पूज्यः अष्टमूर्तिः कल्याणकः॥२२
सर्वसाधुजनैर्वंद्यः सर्वपापविवर्जितः ।
सर्वदेवाधिको देवः सर्वभूतहितंकरः ॥२३॥
सर्वसाधु स्वयं वेद्यो प्रसिद्धो पापनाशनः ।
तनुमात्र चिदानन्दः चैतन्यो चैतवैभवः ॥२४॥
सकलातिशयो देवः मुक्तिस्थो महतामहः ।
मुक्तिकार्याय सन्तुष्टो निरागो परमेश्वरः॥२५॥
महादेवो महावीरो महामोहविनाशकः ।
महाभावो महोदासी महामुक्तिप्रदायकः ॥२६॥

महाज्ञानी महायोगी महातपो महात्मकः ।
महाधिको महावीर्यो महापति पदस्थितः ॥२७॥
महापूज्यो महावंद्यो महाविघ्नविनाशकः ।
महासौख्यो महापुंसो महामहिमहच्युतः ॥२८॥
मुक्तामुक्तिर्निरोधो च एकानेकविनिश्चलः ।
सर्वद्वंदविनिर्मुक्तो सर्वलोक आराधकः ॥२९॥
महासूरो महाधीरो महादुःखविनाशकः ।
महामुक्ति महाधीरो महाहृदो महागुरुः ॥३०॥
निर्मोहो मारविध्वंसी निष्कामो विषयच्युतः ।
भगवन्तो गतभ्रान्तो शान्तिकल्याणकारकः ॥३१॥
परमात्मा परानन्द परं परम आत्मकः ।
परमोजः परं तेजः परमधाम परं महः ॥ ३२ ॥
प्रसूतोऽनन्तविज्ञानः साक्षात् निर्वाणसंस्तुतः ।
नाकृतिर्नाक्षरोऽवर्णः व्योमरूपो जितात्मकः ॥
व्यक्ताव्यक्तकसद्बोधः संसारच्छेदकारकः ।
नरवंद्यो महाराध्यः कर्मजित् धर्मनायकः ॥३४॥

बोधयन् सुजगद्वंद्यो विश्वात्मनरकान्तकः ।
स्वयम्भू भव्यपूज्यात्मा पुनीतो विभवस्तुतः॥३५॥
वर्णातीतो महातीतो रूपातीतो निरञ्जनः ।
अनन्तज्ञानसम्पन्नः देवदेवो सनायकः ॥ ३६ ॥
वरेण्यभवविध्वंशी योगिनां ज्ञानगोचरः ।
जन्ममृत्युजरातंको सर्वविघ्नहरो हरः ॥ ३७ ॥
विश्वदृक् भव्यसम्बन्धः पवित्रो गुणसागरः ।
प्रसन्न परमाराध्यो लोकालोकप्रकाशकः ॥३८॥
रत्नगर्भो जगत्स्वामी इन्द्रवन्द्यः सुरार्चितः ।
निःप्रपंचो निरातंको निःशेषक्लेशनाशकः ॥३९॥
लोकेशो लोकसंसेव्यो लोकालोकप्रकाशकः ।
लोकोत्तमो नृलोकेशो लोकाग्रशिखरस्थितः॥४०॥
नामाष्टकसहस्राणि ये पठन्ति पुनः पुनः ।
ते निर्वाणपदं यान्ति मुच्यन्ते नाऽत्र संशयः॥४१॥

॥ इति लघुसहस्रनाम सम्पूर्णम् ॥

अथ मिच्छामि दुक्कडम् ।

प्रणमुं श्री अरिहंतने, भजुं सरस्वति भावे ।
जीव अनंता में बहु हण्या, कहेतां पार न आवे ।
ते मुज मिच्छामि दुक्कडम्, अरिहंतनी साख ॥ १ ॥

× × ×

के में जीव विराधीआ, चोर्याशी लाख ।
सार संभाळ नहिं करी, कीधा छे बहु घात ॥ ते मुज० ॥ २ ॥
ईतर नित्य निगोदना, सात सातज लाख ।
सात लाख पृथ्वी तणा, सात अपज काय ॥ ते मुज० ॥ ३
दश लाख वनस्पति, प्रत्यक्ष साधारण ।
सात लाख तेज कायना, सात वायुज जाण ॥ ते मुज०
बे ती चौ इन्द्रि जीवना, बबे लाख विख्यात ।
देव, पशु वळी नर्कना, चार चार उत्पात ॥ ते मुज० ॥ ५
चौद लाख मनुष गतिए, लक्ष चौर्याशी गणीया ।
कृतकारित अनुमोदना, मनवचकायथी हणीया ॥ ते मुज०
एणी पेरे परभवे में कर्या, कर्या पाप अनंत ।
त्रिविध त्रिविध करी हुं भम्यो, दुर्गति दातार ॥ ते मुज०
हिंसा करी में जीवनी, बोल्यां जूठा बोल ।
दोष अदत्ता दानसुं मैथुन हणमाद ॥ ते मुज० ॥ ८ ॥
परिग्रह मेळव्यो कारमो, कीधां क्रोध विशेष ।
मान माया लोभ में कर्या, वळी राग ने द्वेष ॥ ते मुज०

चाडी करी में चोतरे, वेर झेर वधार्यो।
कुगुरु देव कुधर्म ने, करी प्रतीतने पाळया ॥ ते मुज०
क्रोध करी जीव दुखव्या, कीधां कूडां कलंक।
निंदा करी में पारकी, रात दिवस वसंत ॥ ते मुज०
खाटकीना भव में कर्या, जीवना वध कीध।
वाघरीने भव चरकली, मारी कंई अगणीत ॥ ते मुज०
माछीने भवे माछलां, झाली जळ थकी काढ्यां।
प्रपंच करी भवे पारधी, मृग मारीने पाड्यां ॥ ते मुज०
काजी मुल्लांने भवे, पढी मंत्र कठोर।
जीव अनंता जे में कर्या, पाप लाग्यां अघोर ॥ ते मुज०
कोटवालनो भव में कर्यो, कर्या आकरा दंड।
बंधीवान मरावीआ, पाड्या कोरडा अंग ॥ ते मुज०
कुंभारनो भव में कर्यो, मार्या भट्ठीने तापे।
तेलीने भवे तल पीलाया, पेट भरायुं में पापे ॥ ते मुज०
परमाधामीने भवे, दीधां नारकी दुःख।
छेदन भेदन वेदना, लेश दीधुं न सुख ॥ ते मुज०
खेडु भवे हळ खेडीया, फोड्यां पृथ्विनां पेट।
आदु सुरण घणां कर्यां, खाधां खूब चपेट ॥ ते मुज०
मालीने भवे रोपीयां, नानाविधि वृक्ष।
मूळ पात्र फल फूलनां, पाप लाग्यां ए लक्ष ॥ ते मुज०
वणझाराना भव में कर्यो, भर्यो अधिक भार।
पांठा पुंठे कीडा पड्या, नहि दया लगार ॥ ते मुज०

छीपाने भवे छेतर्या, कीधा रंगना पास।
अग्नि जळ कीधां गणां, जीव पकव्या छे खास॥ते मुज
सुरपणे रण झूंजतां, मार्या माणस वृंद।
मदिरा मांस मधु भख्यां, खाधां मूळ ने कंद॥ ते मुज०
खाण खोदावी में अति गणी, तेनां पाणी उलेच्यां।
आरंभ कीधा अति घणा, नहीं पापज पेख्यां॥ ते मुज०
अघोर कर्म कर्यो वळो, वनमां दव दीधो।
जीव अनंताने भरखीने, नहीं कर्मथी बीधो॥ ते मुज०
भाडभुंजानो भव में कर्यो, मार्या भट्टीमां जीव।
जुवार चणा बहु सेकीया, पडता अति बूंद॥ ते मुज०
बिल्ली भवे ऊंदर हण्या, गरोळीए अंतारी।
मनुष्य भवे मूढता थकी, में जु लीख मारी॥ ते मुज०
सुवावड दूषण घणा, आणी गर्भ गळाव्या।
जीव अणि विंध्या घणा, भांग्या शीयळ व्रत॥ ते मुज
लुहारनो भव में कर्यो, घड्यां शस्त्र अनेक।
कोस कुहाडा ने पावडा, मार्या मूकी विवेक॥ ते मुज०
सुतारनो भव में कर्यो, लीला वृक्ष वढाव्यां।
आवळ बावळ बोरडी, झाझां मूळ कपाव्यां॥ ते मुज०
हाथीना भव में कर्या, जीव पूंछे पछाड्या।
पंखी माळा तोडीया, सूंढे कंईकने झाड्या॥ ते मुज०
कडीआना भव में कर्या, कुवा वाव खोदाव्या।
टांकां में बन्धावीया, जीव अनन्त पकाव्या॥ ते मुज०

घोबीना भव में कर्या, जळना जीव मार्या ।
धूळवते कईक ढांकीया, दान देता वार्या ॥ ते मुज०
गुज्जरना भव में कर्या, लीला भारा वढाव्या ।
पाडा बल ने ऊँटना, नाक छेदी वींधाव्या ॥ ते मुज०
वणिकना भव में कर्या, कुडां पापज कीधां ।
ओछुं आपी अवकुं लीधुं, तेना दोषज लीधा ॥ ते मुज०
विकथा चोरी करी वळी, सेव्या पंच प्रमाद ।
ईष्ट वियोग पडावीया, रुदन विखवाद ॥ ते मुज०
रांधण पीसण गारण, एवा आरम्भ अनेक ।
रांधण बालण इंधणा, पाप लाग्या विशेष ॥ ते मुज०
साधु ने श्रावक तणा, व्रत लईने भांग्या ।
मूल अने उत्तरतणा, मुझ दोषज लाग्या; ॥ ते मुज०
वींछु सिंह ने चीतरा, गीध स्याल ने समडी ।
ए हिंसकतणे भवे, हिंसा कीधी में अदकी ॥ ते मुज०
एणी पेरे परभवे में कर्यी, बांध्यां कर्म अनंत ।
त्रिविध त्रिविध करी ओचरुं, करूं जन्म पवित्र ॥ ते मुज०
राग बेसाडो जे भणे, गाय ढाल सहित ।
'नरेंद्रकीर्ति' कहे तेहनां, छूटे पाप त्वरित ॥ ते मुज०

वंदना जकडी।

आदि तीर्थंकर प्रथम ही वंदूँ, बर्धमान गुण गाऊंजी।
अजित आदि पारस जिनवरलों, बीस दोय मन ल्याऊंजी
सीमंदर आदिक तीर्थंकर, विदेह क्षेत्रके मांहीजी।
सकल तीर्थंकर गुणगण गाऊं, व्यहरमान मन लाऊंजी॥
भूत भविष्यत् वर्तमान सब, तीस चौविसी वन्दूँजी।
जिन प्रतिमा जिन मंदिर वंदूँ, जैनधर्मको वन्दूँजी॥
गुरु गौतम शारद मन ल्याऊं, नीरथसब चित ध्याऊंजी।
पंच परमपद नित ही समरूं, रत्नत्रय मन लाऊंजी॥
जम्बूद्वीप मनोहर सोहे, लक्ष योजन विस्तारोजी।
मध्य सुदर्शन मेरु बिराजे विजय अचल तहां भानुजी॥
मंदिर विद्युन्माली सोहे, अस्सी चैत्यालय वन्दूँजी।
कोस बत्तीस कैलास बिराजे, रीखबदेव निर्वाणुजी॥
शिखर देशके मध्य बिराजे, सम्मेदाचल वन्दूँजी।
कर्मकाट निर्वाण पहोंच्या, बीस जिनेश्वर वन्दूँजी॥
वासुपूज्य चंपापुर वन्दूँ, पावापुर महावीरोजी।
नेमनाथ गिरनारी वन्दूँ, कोड़ि बहत्तर मुनिवरजी॥
मांगीतुंगी शिखर बिराजे, मुनिवर कोड़ि निर्वाणुंजी।
गजपंथा शत्रुंजय वंदूँ, कोड़ि शिला तारंगाजी॥
मुक्तागिर सोनागिर वंदूँ, पावागिर फुनि वंदूँजी।
आबूगिर चैत्यालय वंदूँ, चूलगिरि फुनि वन्दूँजी॥

अन्तरीक्ष पारस मन ध्याऊँ, रामगिरि शांतिनाथोजी।
रेवा नदी चेलना वंदूँ, द्रोणागिरि फुनि वन्दूंजी॥
कुलभूषण देशभूषण वन्दूँ, जम्बूस्वामी वन्दूँजी।
जहां जहां मुक्ति गये जिनेश्वर, सिद्धक्षेत्र सब वन्दूँजी॥
जम्बूशाल्मलि वृक्ष ही वन्दूँ, चैत्यवृक्ष सब वन्दूँजी।
रजतगिरि कुलाचल वन्दूँ, कंचनगिरि सब वन्दूँजी॥
बखत्यागिरि इक्ष्वागिरि वन्दूँ, गजदन्तागिरि वन्दूँजी।
रूचकगिरि कुन्डलगिरि वन्दूँ, मान्यखेटगिरि वन्दूँजी॥
अंजनगिरि दधिगिरि सब वन्दूँ, नन्दीश्वर जिन वंदूँजी।
भूतानागत वर्तमान सब, चैत्य चैत्यालय वन्दूँजी॥
अकृत्रिम चैत्यालय वन्दूँ, मध्यलोकके मांहीजी।
जहां जहां बिंब बिराजे जिनके, वंदूँ मन वच कायाजी॥
रीखबदेव अरु गौतम वंदूँ, माणिक्यस्वामी वन्दूँजी।
पाली शांति जिनेश्वर वन्दूँ, गोपाचल जिन वन्दूँजी॥
अमोजरा श्री पारश वन्दूँ, तालनपुर महावीरोजी।
जामनेर आदीश्वर वंदूँ, चिंतामनि उज्जैनिजी॥
पाटण मुनिसुव्रत जिन वंदूँ, सेठ सुदर्शन पटनाको।
कर्मकाट निर्वाण पहुँच्या, तिन वन्दौं अघ कटनाको॥
मक्षीपार्श्व जिनेश्वर वंदूँ, कुण्डलपुर मनमानोजी।
उदयापुर चैत्यालय वंदूँ, सोनपुरी एक जुहारीजी॥
अंकलेश्वर आलेश्वर वन्दूँ, विघनहरण कचनेराजी।
जलदेव श्रीगोमट वंदूँ, सवापांचसे डंडोजी॥

विपुलाचल कपलेश्वर वंदूँ, चन्द्रपुरि अरू काशीजी।
कोशांबी काकंदीपुरको, हस्तिनागपुर वंदूँजी॥
सिंहपुरी कदलीपुर वंदूँ, और वंदूँ अयोध्याजी।
जन्म पाय केवलपद पायो, भविजनको संबोध्योजी॥
सौरीपुर बटेश्वर वंदूँ, द्वारावति फुनि वंदूँजी।
पोदनपुर बाहुबलि वंदूँ, पंचकल्याणक वंदूँजी॥
कल्पवासी सब अहमिंद्र अरू, जोतिष पचप्रकारोजी।
भवनवासी चैत्यालय वंदूँ, व्यंतर अष्टप्रकारोजी॥
पूरब दक्षिण पश्चिम उत्तर, दिशा विदिशा मांहीजी।
तीनलोक चैत्यालय वंदूँ, मनवचनतन शिर नाईजी॥
आठ कोड़ी लाख ही छप्पन, सहस सत्यावन वंदूँजी।
चारसो इक्यासी ऊपर, मनवचतनकर वंदूँजी॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, मोक्षमार्ग ये राखोजी।
जैन व्रत जिनवाणी वंदूँ, वीतराग जो भाखीजी॥
महापुराण पुण्याश्रवादिक, पद्मपुराणादिक वंदूँजी।
महाधवल अर जयधवल, नमि धवल ग्रंथको वंदूँजी॥
गोमटसार त्रैलोक्यसार, अमितगति आचारज वंदूँजी।
मूलाचार क्रियाकोष नमि, श्रावकाचारको वंदूँजी॥
समयसार पंचास्तिकाय, अरु द्रव्यसंग्रह वंदूँजी।
प्रवचनसार तत्वार्थ सूत्रजी, द्वादशांगमय वंदूँजी॥
गोवरधन नमि भद्रबाहु नमि, उमास्वामि वंदूँजी।
नेमिचन्द्र कुंदकुंदाचार्य, जिनसेनादिक वंदूँजी॥

अन्तर बाह्य छांड परिग्रह, निर्ग्रंथ तप लीनोजी।
वन्दूँ साधु दिगम्बर पदको, नमस्कार हम कीनोजी॥
अरहंत सिद्ध आयरिय उवझाया, साधू सकलपद वंदूँजी
जो सुमरिया सो भवदधि तरिया, मेटो कर्मको फँदोजी॥
नगर 'भौरा'से जकडी कीनी, सकल भवि मन भावेजी।
दास "बिहारी" विनति गावे, नाम लेत सुख पावेजी॥
मनवच सुने पढ़े चित लावे, तीरथको फल पावेजी।
भूलचुक होय शुद्धकरि बुधजन, मोपे क्षमा करावेजी॥

सवैया।

साधूपूजाते हजारगुणा फल जिन पूजा।
जिनते हजारगुणा फल पूजा सिद्धकी॥
सिद्धते हजारगुणा फल पूजा प्रतिमाकी।
तिहुंबलदाता अष्ट रिद्धि नवनिद्धिकी॥
शांत मुद्रा देख साधू अरहंत सिद्ध भये।
प्रतिमा ही करत है पांचो पद बुद्धकी॥
कारण बखानो सिद्ध होनेका है ध्यान मोक्ष-
का है फल देतको बात स्वर्ग ऋद्धिकी॥

संग्रहकर्ता–झवेरलाल रीखवदास गांधी रतलामवाला, हाल मुंबई।
सं० १९९६ श्रावण सुदी १ ता० ४–८–४०।

श्री तीर्थवन्दना।

आदि जिनेश्वर प्रतिमा वन्दूं, वर्धमान गुण गाऊंजी।
सकल तीर्थंकर मुनिगण मंडित अतीत अनागत ध्याऊंजी
गुरु गौतम शारद मन लाऊं, तीर्थ सकल गुण गाऊंजी।
पंच परमपद नित ही समरूं, रत्नत्रय मन लाऊंजी॥
जम्बू द्वीप मनोहर सोहे, लक्ष योजन परमाणुंजी।
मध्य सुदर्शन मेरू बिराजे, विजय अचल तहां भानुजी॥
मन्दिर, विद्युन्माली सोहे, अस्सी चैत्यालय वन्दूँजी।
कोस बत्तीस कैलास बिराजे, रिषभदेव निर्वाणाजी॥
शिखर देशके मध्य बिराजे, सम्मेदाचल वन्दूँजी।
कर्मकाट निर्वाण पहूँचे, बीस जिनेश्वर वन्दूँजी॥
चम्पापुर वासुपूज्य वन्दूँ, पावापुर वर्धमानाजी।
नेमिनाथ गिरनारी वन्दूँ, यादव कुलके भानूजी॥
कोडि बहत्तर मुनीश्वर वन्दूँ, सातसे फणीवर वंदूँजी।
मांगीतुंगी शिखर बिराजे, मुनिवर क्रोड निर्याणुंजी॥
गजपन्था शत्रुंजय वन्दूँ, कोटि शिला तारङ्गाजी।
मुक्तागिरि सोनागिरि वन्दूँ, पावागढ़ पुनि वन्दूँजी॥
आबूगढ़ चैत्यालय वन्दूँ, अतिशय तीर्थ बडवाणीजी।
अन्तरीक्ष पारस मन वन्दूँ, रामटेक शांतिनाथजी॥
रेवानदी सिद्ध अनन्ता, सिद्धक्षेत्र मुनि वन्दूंजी।
रिषभदेव अरु गोमट वंदूं, माणिकस्वामी वन्दूँजी॥

पाली शांति जिनेश्वर वंदूं, भोपाचल जिनराजजी।
आबूगढ़ श्री पारस वन्दूं, सारंगपुर महावीरजी॥
जामनेर आदिश्वर वन्दूं, चिन्तामणी उज्जेनीजी।
रिषभदेव बावन गज वन्दूं, राजगिरी गढ़ गाऊंजी॥
तेरा महावीरस्वामी वन्दूं, समवशरण जिन ठानूंजी।
उदयगिरी चैत्यालय वन्दूं, सोमपुरी जिनराजजी॥
अंकलेश्वर एरोड़ा वन्दूं, विघ्नहरण कचनेराजी।
जलद देव श्री गोमट वन्दूं, सवापांचसें दण्डजी॥
नँदीश्वर कुन्थलगिरि वन्दूं, जन्मकल्याणक काशीजी।
सिंघपुरी पेठेश्वर वन्दूं, द्वारावती पुनि वन्दूंजी॥
कल्पवासी चैत्यालय वन्दूं, व्यंतरवासी पुनि वन्दूंजी॥
भवनवासी चैत्यालय वन्दूं, ज्योतिषवासी पुनी वन्दूंजी।
पातालवासी चैत्यालय वन्दूं, वन्दूं, पंचप्रकारेजी॥
बीस तपहर चैत्यालय वन्दूं, वन्दूं तीस चोबीसीजी।

तीनलोक चैत्यालय वन्दूं,
अधोमध्य उर्द्धलोक पुनि वन्दूंजी॥
अकृत्रिम कृत्रिम चैत्यालय वन्दूं,
भाव सहित पुनि वन्दूंजी।
चार दिशा चैत्यालय वन्दूं,
पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण पुनि वन्दूंजी॥
आठ दिशा चैत्यालय वन्दूं,
दिशा विदिशा पुनि वन्दूंजी।

दोय दिशा चैत्यालय वन्दूं,
भोगभूमि कर्मभूमि पुनि वन्दूंजी ॥
पन्द्रा भोगभूमि चैत्यालय वन्दूं,
भरत ऐरावत विदेह क्षेत्र पुनि वन्दूंजी ।
जम्बूद्वीप चैत्यालय वन्दूं, अर्ध दोय द्वीप पुनि वन्दूंजी ॥
एक द्वीप चैत्यालय वन्दूं, तीन द्वीप पुनि वन्दूंजी ।
तेरह द्वीप चैत्यालय वन्दूं, भाव सहित पुनि वन्दूंजी ॥
नन्दीश्वर बावन चैत्यालय वन्दूं,
मनवच काय पुनि वन्दूंजी ।
हरेक दिशा चैत्यालय तेरह भाव सहित पुनि वन्दूंजी ॥
अंजनगिरि चैत्यालय वन्दूं, दधिमुख पुनि वन्दूंजी ।
रतिकर पर्वत चैत्यालय वन्दूं, मनवच काय पुनि वन्दूंजी ॥
एवा नंदीश्वर बावन चैत्यालय वन्दूं,
चतुर्मुख चार दिशा पुनि वन्दूंजी ।
हरएक मन्दिर प्रतिमा वन्दूं,
एकसो आठ प्रतिमा भावसहित पुनि वंदूंजी ॥
हरएक प्रतिमा पांचसे धनुष, रत्नमयी पुनि वन्दूंजी ।
अरहन्त सिद्ध प्रतिमा वन्दूं, भाव सहित पुनि वन्दूंजी ॥
तीन कटनी पर प्रतिमा वन्दूं, भाव सहित पुनि वन्दूंजी ।
चार अंगुल अधर प्रतिमा वन्दूं,
भाव सहित पुनि वन्दूंजी ॥

एक शिलासे अनन्त शिला वन्दूं,
भाव सहित पुनि वन्दूंजी।
एक सिद्धसे अनन्त सिद्ध वन्दूं,
भाव सहित पुनि वन्दूंजी॥

कुण्डलादिक क्षेत्र वन्दूं, मनवच काय पुनि वन्दूंजी।
रतिकर गिरि क्षेत्र वन्दूं, भाव सहित पुनि वन्दूंजी॥
जम्बूद्वीपमें एकसो सित्तर क्षेत्र वन्दूं,
भाव सहित पुनि वन्दूंजी।
मध्यलोकमें ४५८ जिनमन्दिर वन्दूं,
भाव सहित पुनि वन्दूंजी॥
गङ्गा सिन्धू उत्तर दिशासे दक्षिण दिशा तक दोई तट
५६०००, ५६००० जिनमन्दिर वन्दूं,
भाव सहित पुनि वन्दूँजी।
गङ्गा नदी पूर्व दिशासे पश्चिम दिशा २८०००, २८०००
जिनमन्दिर वन्दूं, भाव सहित पुनि वन्दूंजी
तारातम्बोलमें ७०० जिनमन्दिर वन्दूं,
भाव सहित पुनि वन्दूंजी॥
तारातम्बोलमें २४७६४ जिन प्रतिमा वन्दूं,
भाव सहित पुनि वन्दूंजी।
तारातम्बोलमें जबला गबला शास्त्र वन्दूं,
भाव सहित वन्दूंजी॥

तारातम्बोलमें जात्रा करतां, मांगीतुंगी परवत पर
२८-४८ हाथ ऊंचीचौड़ी प्रतिमा भावसहित पुनी वंदूंजी
अंगुठा ऊपर श्रीफल १८ रहे, ते चरण
भाव सहित पुनि वन्दूंजी।
तारातम्बोलनी जात्रा करतां,
सरोवर बारा कोसनो ते मध्यमें,
शांतिनाथजी प्रतिमा ६ हाथ चौड़ी
१० हाथ ऊँची ते भाव सहित पुनि वन्दूंजी ॥
तारातम्बोलमें वर्धमान राजा राज करे तेना चोकमें
चार कोसनो एक मंदिर ऊँचो ते मंदिरमें तीन
चोवीसी प्रतिमा पंच रतननी, सिंहासन सोनानो, पंच
रतननो ते प्रतिमाभावसहित पुनि वन्दूंजी।
कोडाकोडि मुनिश्वर वन्दूं,
मांगीतुंगी शिखर पुनि वंदूंजी ॥
अनन्तानन्त मुनिश्वर वन्दूँ, सम्मेदशिखर पुनि वन्दूँजी
धुलेव नगरमें रिषभदेव वन्दूँ, भावसहित पुनि वन्दूँजी
परतावगढ़में शांतिनाथ वन्दूं, तथा चिंतामणि वन्दूँजी
नरनारी जे विनती गावे, मनवांछित फल पावेजी।
"सकलकीर्ति" गण गुण गायो, दास "बिहारी"
बिनती गायो, मनवांछित फल पावेजी।
सकल तीर्थनी करूं वन्दना, मोक्षजु कारण पाऊंजी ॥

आलोचनापाठ।

दोहा—वन्दों पांचों परम गुरु, चौवीसों जिनराज।
करूं शुद्ध आलोचना, सिद्ध करनके काज॥ १॥

सखी छन्द (१४ मात्रा)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निर्वृत्ति काजा, तुम शरन लही जिनराजा॥
इक बे ते चउ इंद्री वा, मनरहित सहित जे जीवा।
तीनकी नहिं करुना धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी॥
समरम्भ समारम्भ आरम्भ, मनवचतन कीने प्रारम्भ।
कृत कारित मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं॥
शत आठ जु इन भेदनतैं, अघ कीने पर छेदनतैं।
तिनकी कहूँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी॥
विपरीत एकांत विनयके, संशय अज्ञान कुनयके।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जात कहीने॥
कुगुरुनकी सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी।
या विध मिथ्यात चढ़ायो, चहुंगतिमधि दोष उपायो॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, परवनितासों दृग जोरी।
आरंभ परिग्रह भीने, पन पाप जु याविधि कीने॥
सपरस रसना घ्राननको, दृग कान विषय सेवनको।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने॥
फल पंच उदंबर खाये, मधु मांस मद्य चित चाये।
नहिं अष्ट मूल गुण धारे, सेये जु विसन दुखकारे।

दुइवीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो॥
अनंतानुबंधी सो जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकरी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये॥
परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि तिवेद संजोग।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम॥
निद्रावश शयन कराया, सुपनेमधि दोष लगाया।
फिर जागि विषय वन धायो, नानाविध विषफल खायो॥
आहार निहार विहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
विन देखे धरा उठाया, विन शोधा भोजन खाया॥
तब ही परमाद सतायो, बहुविध विकलप उपजायो।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गई है॥
मरजादा तुम ढिग लीनी, ताहूमें दोष जु कीनी।
भिन्न २ अब कैसें कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पइये॥
हा हा मैं दुठ अपराधी, त्रसजीवनराशि विराधी।
थावरकी जतन न कीनी, उरमें करुणा नहिं लीनी॥
पृथवी बहु खोद कराई, महलादिक जांगा चिनाई।
विन गाल्यो पुन जल ढोल्यो, पंखातैं पवन विलोल्यो॥
हा हा मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
या मधि जीवनिके खंदा, हम खाये धरि आनंदा॥
हा हा परमाद बसाई, विन देखे अगनि जलाई।
तामध्य जीव जे आये, तेहू परलोक सिधाये॥

बीधो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोध्यो जळायो।
झाडू ले जागां बुहारी, चिंटी आदिक जीव बिदारी ॥
जळ छानि जिवानी कीनी, सोहू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जळथानक पहुंचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥
जळ मळ मोरिन गिरवायो, कृमि कुळ बहु घात करायो।
नदियनि बिच चीर धुवाये, कोसनके जीव मराये ॥
अन्नादिक शोध कराई, तामैं जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गळियारे धूप डराया ॥
पुनि द्रव्य कमावन काजे, बहु आरंभ हिंसा साजे।
कीये तिसनावश भारी, करुना नहिं रंच विचारी ॥
इत्यादिक पाप अनन्ता, हम कीने श्री भगवंता।
सन्तति चिरकाळ उपाई, वानीतैं कहिये न जाई ॥
ताको जु उदय जब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फळ भुंजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसैं करि गावै ॥
तुम जानत केवळज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरन लही है, जिन तारन विरद सही है ॥
इक गांवपती जो होवै, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवनके स्वामी, दुख मेटो अन्तरजामी ॥
द्रोपदिको चीर बढायो, सीताप्रति कमळ रचायो।
अञ्जनसे किये अकामी, दुख मेटो अन्तरजामी ॥
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो।
सब दोष रहित करि स्वामी, दुख मेटहु अन्तरजामी ॥

इन्द्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनिमें नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजे, परमातम निजपद दीजे॥
दोहा-दोष रहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोहि।
सब जीवनके सुख बढै, आनन्द मंगल होय॥
अनुभव माणिक पारखी, जौंहरि आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरन सरन आनन्द॥

इति आलोचनापाठ समाप्त।

सामायिकभाषापाठ।

१-प्रतिक्रमण कर्म।

काल अनन्त भ्रम्यो जगमें सहिये दुख भारी।
जन्ममरण नित किये पापको है अधिकारी॥
कोड़ि भवांतरमांहि मिलन दुर्लभ सामायिक।
धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुखदायक॥ १॥
हे सर्वज्ञ जिनेश किये जे पाप जु मैं अब।
ते सब मनवचकाय योगकी गुप्ति बिना लभ॥
आप समीप हजूरमांहि मैं खड़ो खड़ो सब।
दोष कहूं सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब॥ २॥
क्रोध मान मद लोभ मोह मायावशि प्रानी।
दुःख सहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी॥
बिना प्रयोजन एकेन्द्रिय बि ति चउ पंचेन्द्रिय।
आप प्रसादहि मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय॥ ३॥

आपसमें इक ठोर थापि करि जे दुख दीने।
पेलि दिये पगतलें दाब करि प्राण हरीने॥
आप जगतके जीव जिते तिन सबके नायक।
अरज करौं मैं सुनो दोष मेटो दुखदायक॥ ४॥
अञ्जन आदिक चोर महा घनघोर पापमय।
तिनके जे अपराध भये ते छिमा छिमा किय॥
मेरे जे अब दोष भये ते छमों दयानिधि।
यह पडिकोणो कियो आदि षट्कर्ममाहिं विधि॥ ५॥

२—प्रत्याख्यानकर्म।

जो प्रमादवशि होय विराधे जीव घनेरे।
तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे॥
सो सब झूठो होउ जगतपतिके परसादै।
जा प्रसादतैं मिले सर्व सुख दुःख न लाधै॥ ६॥
मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ।
किये पाप अति घोर पापमति होय चित्त दुठ॥
निंदूँ हूँ मैं बारबार निज जियकों गरहूं।
सब विध धर्म उपाय पाय फिर पापहिं करहूँ॥ ७॥
दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावक कुल भारी।
सतसंगति संयोग धर्म जिन श्रद्धाधारी॥
जिनवचनामृतधार समावर्तै जिनवानी।
तो हू जीव संहारे धिक धिक धिक हम जानी॥ ८॥
इन्द्रिय लंपट होय खोय निज ज्ञान जमा सब।
अज्ञानी जिम करे तसी विधि हिंसक है अब॥

गमनागमन करंतो जीव विरोधे भोले
ते सब दोष किये निंदूँ अब मनवच तोले ॥ ९ ॥
आलोचनविध थकी दोष लागे जु घनेरे।
ते सब दोष विनाश होउ तुमतैं जिन मेरे॥
बारबार इस भांति मोह मद दोष कुटिलता।
ईर्षादिकतैं भये निंदिये जे भयभीता ॥ १० ॥

३—सामायिककर्म।

सब जीवनमें मेरे समताभाव जग्यो है।
सब जिय मो सम समता राखो भाव लग्यो है॥
आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान छांडि करिहूं सामायिक।
संयम मो कब शुद्ध होय यह भाव बधायक ॥ ११ ॥
पृथिवी जल अरु अग्नि वायु चउ काय वनस्पति।
पंचहि थावरमाहिं तथा त्रस जीव बसैं जित॥
बे इन्द्रिय तिय चउ पंचेन्द्रियमाहिं जीव सब।
तिनतैं क्षमा कराऊँ मुझपर क्षमा करो अब ॥ १२ ॥
इस अवसरमें मेरे सब सम कंचन अरु त्रण।
महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहि सम गण॥
जामन मरण समान जानि हम समता कीनी।
सामायिकका काल जितो यह भाव नवीनी ॥ १३ ॥
मेरो है इक आतम तामैं ममत जु कीनो।
और सबै मम भिन्न जानि समतारस भीनो॥
मात पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह।
मोतैं न्यारे जानि जथारथ रूप कस्यो गह ॥ १४ ॥

मैं अनादि जगजालमांहि फँसि रूप न जाण्यो।
एकेन्द्रिय दे आदि जन्तुको प्राण हराण्यो॥
ते अब जीवसमूह सुनो मेरी यह अरजी।
भवभवको अपराध छिमा कीज्यो करि मरजी॥ १५ ॥

४—स्तवनकर्म।

नमूं ऋषभ जिनदेव अजित जिन जीत कर्मको।
संभव भवदुखहरण करण अभिनन्द शर्मको॥
सुमति सुमति दातार तार भवसिंधु पार कर।
पद्मप्रभ पद्माभ भानि भवभीति प्रीतिधर॥ १६ ॥
श्रीसुपार्श्व कृतपास नाश भव जास शुद्ध कर।
श्रीचंद्रप्रभ चंद्रकांतिसम देहकांति धर॥
पुष्पदन्त दमि दोषकोश भविपोष रोषहर।
शीतल शीतल करन हरन भवताप दोषहर॥ १७ ॥
श्रेयरूप जिन श्रेय धेय नित सेय भव्यजन।
वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक भवभय हन॥
विमल विमल मति देन अन्तगत है अनन्त जिन।
धर्म शर्म शिवकरन शांति जिन शांतिविधायिन॥ १८ ॥
कुन्थु कुन्थु मुख जीवपाल अरनाथ जाल हर।
मल्लि मल्लसम मोहमल्ल मारण प्रचार धर॥
मुनिसुव्रत व्रतकरण नमत सुरसंघहि नमि जिन।
नेमिनाथ जिन नेमि धर्मरथमाहिं ज्ञानधन॥१९॥
पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपलसम मोक्ष रमापति।
वर्द्धमान जिन नमूं वमूं भव-दुःख कर्मकृत॥

या विध मैं जिन संघरूप चउवीस संख्यधर।
स्तऊं नमूं हूं बार बार वन्दौं शिवसुखकर ॥ २० ॥

५–वन्दनाकर्म।

वन्दूं मैं जिनवीर धीर महावीर सुसन्मति।
वर्द्धमान अतिवीर वंदिहों मनवचतनकृत ॥
त्रिशला तनुज महेश धीश विद्यापति वन्दूं।
वन्दूं नितप्रति कनकरूप तनु पाप निकन्दूं ॥२१॥
सिद्धारथनृपनन्द द्वंद दुखदोष मिटावन।
दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जगजीवउधारन ॥
कुंडलपुरकरि जन्म जगत जिय आनन्दकारन।
वर्ष बहत्तरि आयु पाय सब ही दुख टारन ॥२२॥
सप्तहस्त तनु तुंग भंगकृत जन्म मरण भय।
बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय ॥
दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु जीवघन।
आप बसे शिवमाहिं ताहि वंदौ मनवचतन ॥२३॥
जाके वन्दनथकी दोष दुख दूर हि जावै।
जाके वन्दनथकी मुक्तितिय सन्मुख आवै ॥
जाके वन्दनथकी वन्द्य होवैं सुरगनके।
ऐसे वीर जिनेश वंदिहूं क्रमयुग तिनके ॥ २४ ॥
सामायिक षटकर्ममाहिं वन्दन यह पञ्चम।
वन्दे वीर जिनेन्द्र इन्द्र शत वंद्य वंद्य मम ॥
जन्म मरण भय हरो करो अघ शांति शांतिमय।
मैं अघकोश सुपोष दोषको दोष विनाशय ॥ २५ ॥

६—कायोत्सर्ग कर्म।

कायोत्सर्गविधान करूं अन्तिम सुखदाई।
काय त्यजन मय होय काय सबको दुखदाई॥
पूरब दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तरमैं।
जिनगृह वंदन करूं हरूं भव पाप-तिमिरमैं॥२६॥
शिरोनतिमैं करूं नमूं मस्तक कर धरिकैं।
आवर्त्तादिक क्रिया करूं मनवचमद हरिकैं॥
तीन लोक जिनभवनमाहिं जिन हैं जु अकृत्रिम।
कृत्रिम हैं द्वयअर्द्धदीपमाहीं वन्दों जिम॥२७॥
आठकोड़िपरि छप्पन लाख जु सहस सत्याणूं।
चारि शतकपरि असी एक जिन मन्दिर जाणूं॥
व्यन्तर ज्योतिषमाहिं संख्य रहते जिनमन्दिर।
जिनगृह वन्दन करूं करहु मम पाप संघकर॥२८॥
सामायिक सम नाहिं और कोउ वैर मिटायक।
सामायिक सम नाहिं और कोउ मैत्रीदायक॥
श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुणथानक।
यह आवश्यक किये होय निश्चयदुखहानक॥२९॥
जे भवि आतम काज करण उद्यमके धारी।
ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी॥
राग दोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब।
बुध महाचन्द्र विलाय जाय तातैं कीजो अब॥३०॥

इति सामायिक भाषापाठ समाप्त।

या विध मैं जिन संघरूप चउवीस संख्यधर।
स्तऊं नमूं हूं बार बार वन्दौं शिवसुखकर ॥ २० ॥

५—वन्दनाकर्म।

वन्दूं मैं जिनवीर धीर महावीर सुसन्मति।
वर्द्धमान अतिवीर वंदिहौं मनवचतनकृत ॥
त्रिशला तनुज महेश धीश विद्यापति वन्दूं।
वन्दूं नितप्रति कनकरूप तनु पाप निकन्दूं ॥२१॥
सिद्धारथनृपनन्द द्वंद दुखदोष मिटावन।
दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जगजीवउधारन ॥
कुंडलपुरकरि जन्म जगत जिय आनन्दकारन।
वर्ष बहत्तरि आयु पाय सब ही दुख टारन ॥२२॥
सप्तहस्त तनु तुंग भंगकृत जन्म मरण भय।
बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय ॥
दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु जीवघन।
आप बसे शिवमाहिं ताहि वंदौ मनवचतन ॥२३॥
जाके वन्दनथकी दोष दुख दूर हि जावै।
जाके वन्दनथकी मुक्तितिय सन्मुख आवै ॥
जाके वन्दनथकी वन्द्य होवैं सुरगनके।
ऐसे वीर जिनेश वंदिहूं क्रमयुग तिनके ॥ २४ ॥
सामायिक षटकर्ममाहिं वन्दन यह पञ्चम।
वन्दे वीर जिनेन्द्र इन्द्र शत वंद्य वंद्य मम ॥
जन्म मरण भय हरो करो अघ शांति शांतिमय।
मैं अघकोश सुपोष दोषको दोष विनाशय ॥ २५ ॥

६–कायोत्सर्ग कर्म।

कायोत्सर्गविधान करूं अन्तिम सुखदाई।
काय त्यजन मय होय काय सबको दुखदाई॥
पूरव दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तरमैं।
जिनगृह वंदन करूं हरूं भव पाप-तिमिरमैं॥२६॥
शिरोनतिमैं करूं नमूं मस्तक कर धरिकैं।
आवर्त्तादिक क्रिया करूं मनवचमद हरिकैं॥
तीन लोक जिनभवनमाहिं जिन हैं जु अकृत्रिम।
कृत्रिम हैं द्वयअर्द्धदीपमाहीं वन्दों जिम॥२७॥
आठकोड़िपरि छप्पन लाख जु सहस सत्याणूं।
चारि शतकपरि असी एक जिन मन्दिर जाणूं॥
व्यन्तर ज्योतिषमाहिं संख्य रहते जिनमन्दिर।
जिनगृह वन्दन करूं हरहु मम पाप संघकर॥२८॥
सामायिक सम नाहिं और कोउ वैर मिटायक।
सामायिक सम नाहिं और कोउ मैत्रीदायक॥
श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुणथानक।
यह आवश्यक किये होय निश्चयदुखहानक॥२९॥
जे भवि आतम काज करण उद्यमके धारी।
ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी॥
राग दोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब।
बुध महाचन्द्र विलाय जाय तातैं कीजो अब॥३०॥

इति सामायिक भाषापाठ समाप्त।

श्री अमितगति आचार्य विरचित—

सामायिकपाठ।

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥१॥
शरीरतः कर्त्तुमनन्तशक्तिं, विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम्।
जिनेन्द्र कोषादिव खड्गयष्टिं, तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥२॥
दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेषममत्वबुद्धेः, समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ॥३॥
मुनीश! लीनाविव कीलिताविव स्थिरौ निषाताविव बिंबिताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव ॥
एकेन्द्रियाद्या यदि देव देहिनः, प्रमादतः संचरता इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिता, तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥
विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्तिना, मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥
विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं, मनोवचःकायकषायनिर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं, भिषग्विषं मंत्रगुणैरिवाखिलम् ॥
अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्रकर्मणः।
व्यधादनाचारमपि प्रमादतः, प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥
क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमं शीलव्रतेर्विलंघनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं, वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥
यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं, मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवलबोधलब्धिम् ॥
बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः

चिन्तामणिं चिन्तितवस्तुदाने, त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि ॥
यः स्मर्य्यते सर्व्वमुनीन्द्रवृन्दैः, यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१२॥
यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः, समस्तसंसारविकारबाह्यः।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३॥
निषूदते यो भवदुःखजालम्, निरीक्षते यो जगदन्तरालम्।
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम ॥१४
विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्युर्व्यसनाद्यतीतः।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलङ्कः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥
क्रोडीकृताशेषशरीरिवर्गाः, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥
यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥
न स्पृश्यते कर्मकलङ्कदोषैः, यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः।
निरञ्जनं नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥
विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासि।
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१९॥
विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ २० ॥
येन क्षता मन्मथमानमूर्छा, विषादनिद्राभयशोकचिन्ता।
क्षयोऽनलेनेव तरुप्रपञ्च, स्तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥
न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतोनोफलकोविनिर्म्मितः।
यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः॥२२

न संस्तरो भद्रसमाधिसाधनं, न लोकपूजा न च संघमेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्यसर्व्वामपि बाह्यवासनाम्॥
न सन्ति बाह्या मम केचनार्थाः, भवामि तेषां न कदाचनाहम्।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं, स्वस्थः सदा त्वं भव भद्रमुक्त्यै॥
आत्मानमात्मन्यविलोक्यमानस्त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र, स्थितोपि साधुर्लभते समाधिम्॥
एकः सदा शाश्वति को ममात्मा, विनिर्मलः साधिगमस्वभावः।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ताः, न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः॥
यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः, कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये॥
संयोगतो दुःखमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम्॥
सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं, संसारकान्तारनिपातहेतुम्।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो, निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे॥२९॥
स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थक तदा॥३०॥
निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोपि कस्यापि ददाति किंचन
विचारयन्नेवमनन्यमानसः, परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम्॥
यैः परमात्माऽमितगतिवन्द्यः, सर्वं विविक्तो भृशमनवद्यः।
शश्वदधीते मनसि लभन्ते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते॥३२॥
इति द्वात्रिंशतिवृत्तैः, परमात्मानमीक्षते।
योऽनन्यगतचेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम्॥३३॥

॥ इति सामायिकपाठं सम्पूर्णम्॥

स्वाध्यायोपयोगी शास्त्र-

आराधना कथाकोष-तीसरा (६१ कथायें) १॥)
चौवीस तीर्थंकरके चौवीस चरित्र २।)
जैनव्रत कथासंग्रह (३१ कथायें) १)
तत्वभावना सचित्र (बृ०सामायिक) १॥।)
अर्थप्रकाशिका (सदासुखजीकृत) ४)
प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (शास्त्र) ३॥)
सागारधर्मामृत पूर्ण टीकासहित ३)
चित्रसेन-पद्मावती चरित्र ।=)
जैनधर्म प्रकाश (सचित्र) ॥)
पतितोद्धारक जैन धर्म १।)
समयसारकलश टीका २)
श्रीपालचरित्र सचित्र १=)
गौतमस्वामी चरित्र १।)
स्वयंभूस्तोत्रटीका १॥।)
सारसमुच्चय टीका १)
पंचास्तिकाय ,, ३।=)
तत्वसार टीका १।)
भ०महावीर १॥।)
भ० पार्श्व० २॥)
चारुदत्त ॥।=)

दिगम्बर जैन
पुस्तकालय,
सूरत ।